

गीत

नीरज

आत्माराम एण्ड संस

दिल्ली • जालन्धर • जयपुर • मेरठ



PRAN-GEET
by
NEERAJ
Rs. 3-00

प्रकाशक
रामलाल पुरी संचालक
आत्माराम एण्ड संस
काश्मीरी गेट दिल्ली
चौड़ा रास्ता जयपुर
माई हीरां गेट जालन्धर
बेगम ब्रिज रोड मेरठ

तृतीय संस्करण १९६१
मूल्य तीन रुपये

मुद्रक
सुरेन्द्र प्रिंटर्स प्राइवेट
लिमिटेड दिल्ली ६

दृष्टिकोण

मेरे कुछ मित्रों का आग्रह है कि मैं अपनी कविता की व्याख्या करूँ। जब मुझसे आग्रह किया गया तब मैंने स्वीकार कर लिया पर अब जब व्याख्या करने बैठा हूँ तो पाता हूँ कि असमर्थ हूँ। मेरे विचार से कविता की और विशेष रूप से गीत की व्याख्या नहीं हो सकती। वह प्राण का कण्ठ का स्वर और अधरों को वाणी दे जाता है कुछ ऐसा अचिन्त्य अनुपम और अनमोल है कि पकड़ में ही नहीं आता। उसे पकड़ने के लिए तो स्वयं खो जाना पड़ता है और जहाँ खोकर पाना हो वहाँ व्याख्या कैसे की जाय?

शब्द जहाँ असमर्थ है, वहाँ कविता जन्म लेती है और जहाँ कविता भी लाचार है वहाँ गीत आता है। लिखे प्राण का अर्थ गद्य है और गाये प्राण का अर्थ गीत है। फिर किसी प्राण से गाये प्राण की व्याख्या कैसे की जाय?

जीवन जहाँ तक एक है वहीं तक वह काव्य है। जहाँ एक न होकर वह अनेक है वहाँ विज्ञान है। अनेकत्व से एकत्व की ओर आना कविता करना है और एकत्व से अनेकत्व की ओर आना तर्क करना है। व्याख्या तर्क ही है।

तर्क का अर्थ है काटना—टुकड़े करना। किन्तु कविता काटती नहीं वह तो जोड़ती है। अभेद में भेद के ज्ञान की शर्त है तर्क, भेद में अभेद की अनुभूति का नाम है काव्य। तर्क द्वारा जो सत्य प्राप्त होता है वह सत्य तो हो सकता है, किन्तु सुन्दर नहीं और जो सुन्दर नहीं है वह आनन्द तो कभी भी नहीं बन सकता। किन्तु काव्य में सुन्दर के बिना सत्य की गति नहीं। इसीलिए साहित्य के क्षेत्र में जब हम 'सत्य' शब्द का प्रयोग करते हैं तब उसका बोध 'शिव और सुन्दर' से समन्वित करा देते हैं। हमें अकेला सत्य अभीष्ट नहीं सत्य का रूप ही हमारा इष्ट है इसीलिए हम कहते हैं—'सत्यं शिवं सुन्दरम्'।

एक बात और भी है अपनी कविता की व्याख्या करने का अर्थ है अपनी व्याख्या करना—उस चेतना की व्याख्या करना जिसके हम कवि हैं। वह चेतना अखंड है। अगाध है इसीलिए आनन्दस्वरूप है। खण्डित होने पर वह आनन्द नहीं रह पाती। काव्य भी आनन्द है—आनन्द से भी एक और ऊपर की वस्तु—स्वर्गानन्द सहोदर और उसका आनन्द भी उसकी अखण्डता में है खण्डित होने पर तो वह आनन्द न रहकर निरानन्द हो जायगा। इसी

लिए मैं कहता हूँ कि काव्य की व्याख्या नहीं की जा सकती।

पर हाँ जिस प्रकार कुसुम के सुवास की व्याख्या न होकर उसकी पँखुरियों के रूप रंग (वातावरण) के विषय में कुछ बताया जा सकता है उसी प्रकार काव्य के भाव की मीमांसा न सम्भव होकर भी उसके साधनों और उसके कारणों के विषय में कुछ संकेत किये जा सकते हैं।

जीवन के सत्ताइस पृष्ठ पढ़ने के बाद मेरी अनुभूति अब तक केवल तीन तत्व प्राप्त कर सकी है—सौन्दर्य प्रेम और मृत्यु। इनका अर्थ मेरी कविता में क्रमशः स्थिति (सौन्दर्य) गति (प्रेम) और यति (मृत्यु) है। अपने पाठकों और आलोचकों की सुविधा के लिये मैं प्रत्येक की अलग-अलग व्याख्या करूँगा—

सौन्दर्य—

सौन्दर्य का अर्थ मेरी दृष्टि में संतुलन (Harmony), क्रम (Order), आकर्षण (Gravitation or Attraction) स्थिति-कारण (Force of existence) और सब मिलाकर स्थिति शक्ति है। उदाहरणार्थ मान लीजिये आपके सम्मुख चार व्यक्ति खड़े हैं। आप उन चार व्यक्तियों में से केवल एक को सुन्दर बतलाते हैं और शेष तीनों को नहीं। अब प्रश्न उठता है कि आपके पास वह कौन-सा पैमाना है जिससे नाप-जोख कर आपने चार व्यक्तियों में से केवल एक को ही सुन्दर ठहराया। आप कहते हैं—पहले व्यक्ति की न तो मुखाकृति ही सुन्दर है और न उसका शरीर ही सुडौल है फिर उसे सुन्दर कैसे कह सकते हैं? दूसरे व्यक्ति को आप यह कह कर असुन्दर ठहरा देते हैं कि उसकी मुखाकृति (नाक कान आँख ओठ आदि) तो सुन्दर है पर उसका शरीर सुडौल नहीं। तीसरे व्यक्ति के लिये आप कहते हैं—उसका शरीर तो सुडौल है पर उसकी मुखाकृति असुन्दर है—इसलिए उसे भी सुन्दर नहीं कहा जा सकता चौथा व्यक्ति जिसे आपने सुन्दर बतलाया है आप कहते हैं कि नख से शिख तक उसका प्रत्येक शरीरावयव निर्दोष है। उसके सम्पूर्ण अंगों में एक समुचित अनुपात (Proportion) है। न उसकी नाक मोटी है न आँख छोटी। न उसके हाथ मोटे हैं और न पाँव पतले अर्थात् उसका सम्पूर्ण शरीर सन्तुलित है और इसीलिए वह सुन्दर है। इसी दृष्टि से यदि आप अपनी ओर भी दृष्टिपात करें तो आपको पता चलेगा कि स्वयं आपके शरीर में भी पंचतत्वों का एक Proportion है जिसके कारण आपकी स्थिति है यानी आप जीवित हैं। जिस दिन यह अनुपात क्षीण हो जाता है उसी दिन मृत्यु हो जाती है। उर्दू के महाकवि

चकबस्त ने इसी सत्य को इस प्रकार कहा है—

"ज़िन्दगी क्या है अनासिर में ज़हूरे तरतीब,
मौत क्या है—इन्हीं अजज़ा का परीशां होना।"

जहाँ सन्तुलन है अनुपात है वहाँ क्रम (Order) है। यूँ कहें तो अधिक उपयुक्त होगा कि क्रम ही सन्तुलन है—Order is proportion। सृष्टि में भी एक क्रम है। प्रत्येक गतिशील तत्त्व में एक क्रम होता है। चलती हुई रेलगाड़ी में भी एक लय होती है। सम्पूर्ण विश्व ही एक लय है। हजारों-लाखों वर्ष हो गये सूरज सदा से सुबह ही निकला और चन्द्रमा रात को ही उदय होता है। न तो किसी ने (केवल कवि को छोड़कर) रात में सूरज देखा और न किसी ने दिन में चाँद। शताब्दियों की माँग का सिन्दूर झर गया पर सृष्टि के इस क्रम में रंचमात्र भी अन्तर नहीं आया। और इस सृष्टि के सम्राट् विष्णु की ओर भी ज़रा देखिये। इस संसार के पालन का भार उसे मिला है पर वह आदिकाल से कमल के पत्ते पर शेष को शैय्या बनाये हुए क्षीरसागर में शयन कर रहा है। आश्चर्य की बात है कि वह राजा जिस पर इतने विशाल साम्राज्य के पालन और संरक्षण का भार है इस प्रकार निश्चिन्त होकर लेटा है। पर इसमें अचरज की बात कुछ भी नहीं। जिसके राज्य में सब कुछ अपने आप क्रम से संचालित होता रहता है उस राज्य के राजा को दौड़ धूप की क्या आवश्यकता—वह तो ऐसे निश्चिन्त होकर सोता है जैसे क्षीरसागर में विष्णु। तो इस सृष्टि में एक क्रम है सन्तुलन है जिसका नाम है, सौन्दर्य और जो सम्पूर्ण विश्व की स्थिति का कारण है।

दूसरी तरह से सोचिये। सुन्दर वस्तु की ओर आप देखते हैं तो वह आपको अपनी ओर आकर्षित करती है। आकर्षण चेतन का गुण है यानी जहाँ सौन्दर्य है वहाँ चेतना है जीवन है। तो सौन्दर्य एक चेतन आकर्षण-शक्ति है। वैज्ञानिक दृष्टि से देखिये तो पता चलेगा कि सम्पूर्ण विश्व की स्थिति का कारण भी आकर्षण है। ये धरती आकाश सूरज चाँद सितारे ग्रह उपग्रह सब एक आकर्षण-डोर में बँधे घूम रहे हैं—

"एक ही डोर पर घूमती है धरा
एक ही डोर से बस बँधा है गगन
एक ही साँस में ज़िन्दगी क़ैद है,
एक ही तार से बुन गया है कफ़न।"

आकर्षण में जिस दिन विपर्यय होता है, उसी दिन प्रलय हो जाती है।

लिए मैं कहता हूँ कि काव्य की व्याख्या नहीं की जा सकती।

पर हाँ जिस प्रकार कुसुम के सुवास की व्याख्या न होकर उसकी पंखुरियों के रूप रंग (वातावरण) के विषय में कुछ बताया जा सकता है, उसी प्रकार काव्य के भाव की मीमांसा न सम्भव होकर भी उसके साधनों और उसके कारणों के विषय में कुछ संकेत दिये जा सकते हैं।

जीवन के सत्ताइस पृष्ठ पढ़ने के बाद मेरी अनुभूति अब तक केवल तीन सत्य प्राप्त कर सकी है—सौन्दर्य प्रेम और मृत्यु। इनका अर्थ मेरी कविता में क्रमशः स्थिति (सौन्दर्य) गति (प्रेम) और यति (मृत्यु) है। अपने पाठकों और आलोचकों की सुविधा के लिये मैं प्रत्येक की अलग-अलग व्याख्या करूँगा—

सौन्दर्य—

सौन्दर्य का अर्थ मेरी दृष्टि में संतुलन (Harmony), क्रम (Order) आकर्षण (Gravitation or Attraction) स्थिति-कारण (Force of existence) और सब मिलाकर स्थिति ध्वनित है। उदाहरणार्थ मान लीजिये आपके सम्मुख चार व्यक्ति खड़े हैं। आप उन चार व्यक्तियों में से केवल एक को सुन्दर बतलाते हैं और शेष तीनों को नहीं। अब प्रश्न उठता है कि आपके पास वह कौन-सा पैमाना है जिससे नाप-जोख कर आपने चार व्यक्तियों में से केवल एक को ही सुन्दर ठहराया। आप कहते हैं—पहले व्यक्ति की न तो मुखाकृति ही सुन्दर है और न उसका शरीर ही सुडौल है, फिर उसे सुन्दर कैसे कह सकते हैं ? दूसरे व्यक्ति को आप यह कह कर असुन्दर ठहरा देते हैं कि उसकी मुखाकृति (नाक कान आँख ओठ आदि) तो सुन्दर है पर उसका शरीर सुडौल नहीं। तीसरे व्यक्ति के लिये आप कहते हैं—उसका शरीर तो सुडौल है पर उसकी मुखाकृति असुन्दर है—इसलिए उसे भी सुन्दर नहीं कहा जा सकता। चौथा व्यक्ति जिसे आपने सुन्दर बतलाया है आप कहते हैं कि नख से शिख तक उसका प्रत्येक शरीरावयव निर्दोष है। उसके सम्पूर्ण अंगों में एक समुचित अनुपात (Proportion) है। न उसकी नाक मोटी है न आँख छोटी। न उसके हाथ मोटे हैं और न पाँव पतले अर्थात् उसका सम्पूर्ण शरीर सन्तुलित है और इसीलिए वह सुन्दर है। इसी दृष्टि से यदि आप अपनी ओर भी दृष्टिपात करें तो आपको पता चलेगा कि स्वयं आपके शरीर में भी पंचतत्वों का एक Proportion है, जिसके कारण आपकी स्थिति है यानी आप जीवित हैं। जिस दिन यह अनुपात क्षीण हो जाता है, उसी दिन मृत्यु हो जाती है। उर्दू के महाकवि

चकबस्त ने इसी सत्य को इस प्रकार कहा है—

"ज़िन्दगी क्या है अनासिर में ज़हूरे तरतीब
मौत क्या है—इन्हीं अजज़ा का परीशाँ होना।"

जहाँ सन्तुलन है अनुपात है वहाँ क्रम (Order) है। यूँ कहें तो अधिक उपयुक्त होगा कि क्रम ही सन्तुलन है—Order is proportion। सृष्टि में भी एक क्रम है। प्रत्येक गतिशील तत्त्व में एक क्रम होता है। चलती हुई रेलगाड़ी में भी एक क्रम होता है। सम्पूर्ण विश्व ही एक क्रम है। हजारों-लाखों वर्ष हो गये सूरज सदा से सुबह ही निकलता और चन्द्रमा रात को ही उदय होता है। न तो किसी ने (केवल कवि को छोड़कर) रात में सूरज देखा और न किसी ने दिन में चाँद। शताब्दियों की माँग का सिन्दूर झर गया, पर सृष्टि के इस क्रम में रंचमात्र भी अन्तर नहीं आया। और इस सृष्टि के सम्राट् विष्णु की ओर भी ज़रा देखिये। इस संसार के पालन का भार उन्हें मिला है पर वह आदिकाल से मखमल के गद्दे पर शेष को शैय्या बनाये हुए क्षीरसागर में शयन कर रहा है। आश्चर्य की बात है कि वह राजा जिस पर इतने विशाल साम्राज्य के पालन और संरक्षण का भार है इस प्रकार निश्चिन्त होकर लेटा है। पर इसमें अचरज की बात कुछ भी नहीं। जिसके राज्य में सब कुछ अपने आप क्रम से संचालित होता रहता है उस राज्य के राजा को दौड़-धूप की क्या आवश्यकता—वह तो ऐसे निश्चिन्त होकर सोता है जैसे क्षीरसागर में विष्णु। तो इस सृष्टि में एक क्रम है सन्तुलन है जिसका नाम है सौन्दर्य और जो सम्पूर्ण विश्व की स्थिति का कारण है।

दूसरी तरह से सोचिये। सुन्दर वस्तु की ओर आप देखते हैं तो वह आपको अपनी ओर आकर्षित करती है। आकर्षण चेतन का गुण है यानी जहाँ सौन्दर्य है वहाँ चेतना है जीवन है। तो सौन्दर्य एक चेतन आकर्षण-शक्ति है। वैज्ञानिक दृष्टि से देखिये तो पता चलेगा कि सम्पूर्ण विश्व की स्थिति का कारण भी आकर्षण है। ये धरती आकाश सूरज चाँद सितारे ग्रह उपग्रह सब एक आकर्षण-डोर में बँधे घूम रहे हैं—

"एक ही कील पर घूमती है धरा
एक ही डोर से बस बँधा है गगन,
एक ही साँस में ज़िन्दगी क़ैद है
एक ही तार से बुन गया है कफ़न।"

आकर्षण में जिस दिन विकर्षण आता है उसी दिन प्रलय हो जाती है।

अर्थात् आकर्षण (सौन्दर्य) ही स्थिति है।

इसी से मैं सौन्दर्य को सृष्टि की स्थिति का कारण शिव शक्ति मानता हूँ। जिस दिन सौन्दर्य इस मिट्टी को स्पर्श करता है उसी दिन चेतना (प्राण अथवा ताप) का जन्म होता है। यह एक विज्ञान सम्मत सत्य है कि दो वस्तुओं के स्पर्श या संघर्ष से ताप (Heat) की उत्पत्ति होती है। मेरे गीतों में कई स्थानों पर इसकी प्रतिध्वनि मिलेगी जैसे इन पंक्तियों में—

(१) "एक ऐसी हँसी हँस पड़ी धूल मधु
मास इन्सान की मुस्कराने लगी
दान देती किसी ने कहीं छू दी
आँख रोती हुई गीत गाने लगी।"

अथवा

(२) "एक नाजुक किरन छू गई इस तरह
धुप-अंधेरा प्राण का दीप जलने लगा
एक आवाज आई किसी ओर से
हर मुसाफिर बिना पाँव चलने लगा।"

अथवा

(३) कहाँ दीप है जो किसी उर्वशी की
किरन उँगलियों को छूमे बिना जला हो।

अथवा

(४) परस तुम्हारा प्राण बन गया,
दरस तुम्हारा श्वास बन गया।

तीसरे उद्धरण में उर्वशी सौन्दर्य का प्रतीक है। दीपक के रूपक से चेतना के जन्म की ओर संकेत है। चौथे उद्धरण में सौन्दर्य और प्रेम से किस प्रकार प्राण (ताप चेतना) और श्वास (गति) का जन्म हुआ—इसकी कहानी है। सौन्दर्य और प्रेम द्वारा सृष्टि के उद्भव और विकास का रूपक यह गीत है।

प्रेम—

किन्तु केवल स्थिति या स्थिति ही जीवन नहीं है, वहाँ गति भी है और जीवन को गति देने वाली शक्ति का ही नाम है प्रेम। तात्विक दृष्टि से प्रेम का अर्थ है—एक से दो होना, दो से अनेक होना और अनेक से फिर एक हो जाना। सृष्टि के विकास का भी यही रहस्य है—'एकोऽहम् बहुस्याम'। यहाँ

अद्वैत है, वहाँ प्रेम नहीं हो सकता। प्रेम के लिए द्वैत की आवश्यकता है। द्वैत अनेकत्व को जन्म देता है किन्तु प्रेम इस द्वैत (व्यष्टि) और अनेकत्व (समष्टि) से होता हुआ अद्वैत की ओर ही जाता है। सम्पूर्ण सृष्टि एक तत्व से बनी है और उसी में समा जायेगी।

व्यावहारिक दृष्टि से प्रेम का अर्थ है किसी को प्राप्त करने की और प्राप्त करके स्वयं वही बन जाने की इच्छा-लालसा या आकांक्षा। प्राप्त करने का अर्थ है किसी स्वप्न को किसी प्यास को या किसी आदर्श को साकार करने की कामना। और कामना ही गति है।

"जब तक जीवित आस एक भी
तभी तलक साँसों में भी गति" (बादर बरस गयो)

अथवा

हँस अधर उसने चलाती चाह है
आदमी चलता नहीं संसार में

जब हम अपनी दृष्टि भीतर से बाहर की ओर करते हैं तब हम प्रेम (कामना-इच्छा) करते हैं और तभी हम किसी आदर्श को जन्म देते हैं। जो वस्तु भीतर है उसके लिए हमें भाग-दौड़ नहीं करनी पड़ती किन्तु जो वस्तु बाहर है उसके लिए प्रयत्न अनिवार्य है। यद्यपि प्रेम भी एक भावना का ही नाम है जो भीतर है किन्तु उसका आकार बाहर होता है। वह किसी व्यक्ति वस्तु या आदर्श का रूप धारण कर ही साकार हो सकता है—वह निराकार साकार है। यदि तनिक सूक्ष्म दृष्टि से देखिए तो पता चलेगा कि प्रेम के लिए हम स्वयं (एक) का ही भावना के माध्यम से एक और रूप रचते हैं। जो हमारा इष्ट है वस्तुतः वह 'पर' नहीं बल्कि हमारा 'स्व' ही भीतर से बाहर आकर 'पर' बन गया है यानी हम स्वयं भीतर से बाहर आकर स्वयं को प्रेम करते हैं "निराकार ! जब तुम्हें दिया आकार स्वयं साकार हो गया।" इसी लिए मैं कहता हूँ कि प्रेम भावना का सूक्ष्म बाह्य प्रयत्न है—व्यष्टि और समष्टि से होकर इष्ट तक जाने का एक मार्ग। तो प्रेम एक प्रयत्न है और प्रयत्न ही गति है। जीवन में गति है तो वह प्रेम है।

यहाँ एक प्रश्न पूछा जा सकता है—क्या प्रेम जीवन के लिए अनिवार्य है? मेरा उत्तर है 'हाँ' किन्तु क्यों? इसलिए कि वह हृदय की अनिवार्य भूख है। पर इस भूख को समझने के लिए हमें सृष्टि के जन्म तक दृष्टि फैलानी होगी। सारे धर्मग्रन्थों ने स्वीकार किया है कि इस विश्व का उद्भव एक तत्त्व से हुआ

है। लेकिन यह किस प्रकार संभव है। प्रकृति और पुरुष के संयोग का नाम सृष्टि है। दो के बिना जन्म कहाँ ? तो मानना पड़ता है कि वह आदि-तत्व जिससे इस विश्व की रचना हुई है अवश्य ही एक होकर दो था। हमारे यहाँ उसे अर्ध-नारीश्वर कहा गया है आधा अंग स्त्री का और आधा अंग पुरुष का—एक साथ स्त्री-पुरुष—दो। (अभी पपीते की भी कुछ ऐसी नस्लें मिली हैं जो एक साथ नर-मादा होती हैं) उस अर्धनारीश्वर (एक तत्व) ने प्रेम के लिए या कहिये सृष्टि प्रसारण के लिए, केलि के लिए, क्रीड़ा के लिए अपने को दो में विभाजित किया (अद्वैत ने द्वैत को जन्म दिया) दो के बाद चार चार के बाद आठ और फिर इस तरह सृष्टि बन गई। किन्तु आदि-तत्व के विभाजन (division) से संसार में एक बहुत बड़ी दुर्घटना हो गई कि प्रत्येक चेतन तत्व एक अपूर्ण आत्मा—विभाजित आत्मा हो गया। फलस्वरूप उसके हृदय में प्यास है भूख है, अपने उस आत्मा के साथी (Soul-mate) के लिए जो सृष्टि के आदिकाल से उससे अलग है और जिसको खोजने के लिए, जिसको प्राप्त करने के लिए बार-बार उसे मिट्टी के ये कपड़े बदलने पड़ते हैं—

"प्राण के इस नगर में तुम्हीं एक थे
खोजता मैं जिसे आ गया था यहाँ
तुम न होते अगर तो मुझे क्या पता
तन भटकता कहाँ मन भटकता कहाँ
यह तुम्हीं हो कि जिसके लिए आज तक
मैं सिसकता रहा जन्म में काल में
यह तुम्हीं हो कि जिसके बिना रात भर
मैं भटकता रहा रोज श्मशान में"

बस आत्मा के साथी के लिए जो प्रत्येक चेतन तत्व में प्यास और चाह है, उसी का नाम प्रेम है और यह प्यास तब तक तृप्त नहीं बनेगी जब तक उस मन के मीत से आत्म-सम्बन्ध स्थापित नहीं होगा। यह आवागमन का चक्र भी तब तक चलता रहेगा जब तक वह नहीं मिलेगा। जिस दिन वह मिल जायगा उसी दिन मुक्ति हो जाएगी। मैं ही क्या मैं जिधर दृष्टि डालता हूँ देखता हूँ—

"दीप को अपना बनाने को पतंगा जल रहा है
बूँद बनने को समुन्दर का हिमालय गल रहा है,

प्यार पाने को धरा का मैल है व्याकुल गगन में
घूमने को भानु निशि दिन श्वास पन्थी चल रहा है।
(भावर बरस वर्मा)

तो हम बार-बार अपने बिछड़े हुए साथी की खोज करने जाते हैं पर बार-बार हम भटक जाते हैं—या तो हम अपना लक्ष्य पूजन-भवन (मंदिर मस्जिद) को बना लेते हैं या प्रकृति को या योग-समाधि को। हम मनुष्य हैं हमारी आत्मा का साथी तो कहीं मनुष्यों में ही मिलेगा। किन्तु हम वहाँ न खोजकर इधर-उधर भटकते फिरते हैं। फिर मस्ति कैसे हो? मुझे भी भरमाया गया था—

"खोजने जब चला मैं तुम्हें विश्व में
मन्दिरों ने बहुत कुछ भुलावा दिया
और पर यह हुई उम्र की दौड़ में
ध्यान देने न कुछ पत्थरों का दिया
रास्तों ने सुझा सीन भूलें चरण
चाह जाना कभी ने गले में लगन
एक तस्वीर तेरी लिये किन्तु मैं
राह दामन बचाकर गया ही निकल।"

पर इस बार मेरे पास उसकी तस्वीर थी इसलिए मैं भूला नहीं। पर अभी पलम्म मिला नहीं है—अगर यूँ कहूँ कि मिलकर छूट गया है तो अधिक सही होगा। जीवन का यह बहुत बड़ा अभिशाप और साथ-साथ वरदान भी है कि जो हमारी मंजिल होती है जब वह समीप आती है तब या तो हम उसको पीछे छोड़कर आगे बढ़ जाते हैं या वह स्वयं और आगे बढ़ जाती है—

पागल हो तलाश में जिसकी
हम चूर बन जाते रज कण की
किन्तु प्राप्ति की व्याकुलता में
कभी कभी हम मंजिल से भी आगे बढ़ जाते।

अथवा

मैं समझता था कि मंजिल पर पहुँच आना-जाना यह खतम हो जायगा
पर हजारों बार ही ऐसा हुआ पास आकर दूर करना पड़ गया।

इसी प्रकार जब हम भावना (प्रेम) के माध्यम से अपने हम आत्मा के साथी के निकट पहुँचते हैं तो वह पीछे खिसकता है और खिसकते-खिसकते

विश्वात्मा में मिल जाता है। अन्त में हम भी उसकी खोज करते-करते विश्वात्मा तक पहुँच जाते हैं—

"मैं तो तेरे पूजन को आया था तेरे द्वार
तू ही मिला न मुझे वहाँ मिल गया जग-संसार।"

और फिर मनुष्य स्वयं ही कहने लगता है—

दूर कितने भी रहो तुम पास प्रतिपल,
क्योंकि मेरी साधना ने पल निमिष जल
कर दिए केन्द्रित सदा को साथ बल से
विश्व में तुम और तुम में विश्व भर का प्यार।
[illegible] अमर ही अब तुम्हारा हार।

और जिस दिन मनुष्य अपनी आत्मा का प्रेम (भावना) के द्वारा विश्वात्मा से तादात्म्य स्थापित कर लेता है उसी दिन उसकी मुक्ति हो जाती है। विश्वात्मा से अपनी आत्मा का तादात्म्य ही मुक्ति है और यह सदेह ही प्राप्त हो जाती है आवागमन के चक्र को बहुत दूर छोड़कर।

एक बात इस सम्बन्ध में और कह दूँ तो अनुपयुक्त न होगा। जो व्यक्ति प्रेम' को नहीं जानता वह केवल 'मैं' (अहं) को ही जानता है। और केवल 'मैं' को जानने का अर्थ है शेष सृष्टि के रागात्मक सम्बन्ध से हीन हो जाना। किन्तु जो व्यक्ति प्रेम करता है वह 'मैं' (अहं) को समूल नष्ट तो नहीं करता उसका 'तुम' से सम्बन्ध स्थापित कर उसका पर्यवसान करता है। वह 'मैं' कहता तो है पर 'मैं' कहने से पूर्व वह कहता है 'तुम'। यथा—

"पथ तुम्हारी थी मैं तो बस चलकर तुमने पूरा किया था,
मन तुम्हारा था मैंने तो केवल सर्वस्व दिखलाया था।

और इस प्रकार वह व्यष्टि की संकुचित सीमा से निकलकर समष्टि की ओर जाता है—अपने व्यक्तित्व का उत्थान कर देवत्व की ओर जाता है। इसीलिए मैं प्रेम को जीवन की गति के साथ-साथ एक बहुत बड़ी शक्ति—एटम बम से भी अधिक प्रबल शक्ति मानता हूँ और जो उसका विरोध करता है उससे कहता हूँ—

प्रेम बिन मनुष्य दुष्चरित्र है
अथवा
प्रेम बिना न तो मनुष्य अपूर्ण है।

मृत्यु—

प्रेम जीवन की गति है। अपनी आत्मा के साथी के लिए जो खोज हम विभिन्न रूपों में कर रहे हैं उसका नाम जीवन है। पर जो खोज करता है वह थकता भी है। संसार की प्रत्येक वस्तु शक्ति और गति को जीवित रखने के लिए विश्राम लेती है। यह चेतना जो हजारों बरसों से अपने साथी के लिए भटकती फिर रही है इसको भी थकान आती है। थकान आने पर यह भी विश्राम चाहती है। इसको अपनी सेज पर जो क्षण भर विश्राम देती है—उसी का नाम है मृत्यु—जिसे मैं यति कहता हूँ।

"जीवन यथा माझी के तन में केवल गति भर देना
और मृत्यु यथा उस गति को ही क्षण भर यति कर देना।" (बादर बरस गयो)

अथवा

"है आवश्यक सी विराम भी
यदि पथ लम्बा और कठिन हो,
पर केवल उतना ही जितने
से पथ-श्रम की दूर थकन हो।"

इन तीन सत्यों के अतिरिक्त एक चौथा सत्य भी है—जिसका नाम है रोटी (पेट की भूख)। हृदय की भूख-प्यास जिस प्रकार जीवन-स्थिति के लिये आवश्यक है उसी प्रकार पेट की भूख भी शरीर स्थिति के लिए अनिवार्य है। और जिस प्रकार हृदय (प्रेम) के माध्यम से मनुष्य अन्त में विश्व की एकता तक पहुँचता है उसी प्रकार रोटी के माध्यम से भी हम अन्त में मानव-एकता तक ही पहुँचते हैं। दोनों का लक्ष्य एक है इसलिए दोनों को मैंने एक प्रेम के अन्तर्गत ही ले लिया है।

जीवन के प्रति जो मेरी दृष्टि है वह मैंने यहाँ आपके सामने स्पष्ट की है। यह गलत है या सही प्रतिगामी या प्रगतिवादी, यह तो निर्णय आप करेंगे। मैं तो केवल नम्र गर्व के साथ इतना ही कहता हूँ कि इस दृष्टिकोण से मुझे अपने जीवन में काफी बल मिला है।

'परदेशी'
४० मैरिस रोड
अलीगढ़

—नीरज

पत्थरों के देश
की
राजकुमारी को



क्रम

क्रम

क्या करेगा प्यार वह····

१

क्या करेगा प्यार वह भगवान को ?
क्या करेगा प्यार वह ईमान को ?
जन्म लेकर गोद में इन्सान की
प्यार कर पाया न जो इन्सान को।

२

तुम झूम झूम गाओ रोते नयन हँसाओ
मैं हर नगर डगर के काँटे बुहार दूँगा !

भटकी हुई पवन है
सहमी हुई किरन है
न पता कहीं सुबह का
हर ओर तम गहन है
तुम द्वार द्वार जाओ परदे उघार आओ
मैं सूर्य चाँद सारे भू पर उतार दूँगा ।
तुम झूम झूम गाओ ।

भीगा हरेक आँचल
टूटी हरेक पायल
व्याकुल हरेक चितवन
घायल हरेक काजल
तुम सेज सेज जाओ, सपने नये सजाओ,
मैं हर गली गली के पी को पुकार दूँगा ।
तुम झूम झूम गाओ ।

विधवा हरेक डाली
हर एक नीड़ खाली
गाती न कहीं कोयल
दिखता न कहीं माली
तुम बाग बाग जाओ हर फूल को जगाओ
मैं धूल को उठाकर सबको बहार दूँगा ।
तुम झूम झूम गाओ ।

मिट्टी उबल रही है
धरती सम्हल रही है
इन्सान जग रहा है
दुनियाँ बदल रही है
तुम उठ खड़ जाओ वो बीज डाल आओ
इतिहास से हुई मैं गलती सुधार दूँगा ।
तुम झूम झूम गाओ ।



कोई नहीं पराया

५

कोई नहीं पराया मेरा घर सारा संसार है।

मैं न बँधा हूँ देश-काल की जंग लगी जंजीर में
मैं न खड़ा हूँ जाति-पाँति की ऊँची-नीची भीड़ में
मेरा धर्म न कुछ स्याही-शब्दों का सिर्फ गुलाम है
मैं बस कहता हूँ कि प्यार है तो घट-घट में राम है
मुझसे तुम न कहो मंदिर-मस्जिद पर मैं सर टेक दूँ
मेरा तो आराध्य आदमी देवालय हर द्वार है।
कोई नहीं पराया मेरा घर सारा संसार है।।

कहीं रहे कैसे भी मुझ को प्यारा यह इन्सान है
मुझको अपनी मानवता पर बहुत-बहुत अभिमान है
अरे नहीं देवत्व मुझे तो भाता है मनुजत्व ही,
और छोड़कर प्यार नहीं स्वीकार सकल अमरत्व भी
मुझे सुनाओ तुम न स्वर्ग-सुख की सुकुमार कहानियाँ
मेरी धरती सौ-सौ स्वर्गों से ज्यादा सुकुमार है।
कोई नहीं पराया मेरा घर सारा संसार है

मुझे मिली है प्यास विषमता का विष पीने के लिए,
मैं जन्मा हूँ नहीं स्वयं-हित जग-हित जीने के लिए
मुझे दी गई आग कि इस तम में मैं आग लगा सकूँ
गीत मिले इसलिए कि घायल जग की पीड़ा गा सकूँ
मेरे दर्दीले गीतों को मत पहनाओ हथकड़ी
मेरा दर्द नहीं मेरा है सबका हाहाकार है।
कोई नहीं पराया मेरा घर सारा संसार है॥

मैं सिखलाता हूँ कि जियो औ जीने दो संसार को
जितना ज्यादा बाँट सको तुम बाँटो अपने प्यार को
हँसो इस तरह हँसे तुम्हारे साथ दलित यह धूल भी
चलो इस तरह कुचल न जाये पग से कोई शूल भी
सुख न तुम्हारा सुख केवल जग का भी उसमें भाग है
फूल डाल का पीछे पहले उपवन का शृंगार है।
कोई नहीं पराया मेरा घर सारा संसार है॥



प्रेम-पथ हो न सूना

४

प्रेम-पथ हो न सूना कभी इसलिए
जिस जगह मैं थकूँ उस जगह तुम चलो।

कब्र सी मौन धरती पड़ी पाँव पर
शीश पर है कफ़न सा घिरा आसमाँ
मौत की राह में मौत की छाँह में
चल रहा रात-दिन साँस का कारवाँ

जा रहा हूँ चला जा रहा हूँ बढ़ा
पर नहीं ज्ञात है किस जगह शाम हो ?
जिस जगह पग रुके, किस जगह मग छुटे
किस जगह शीत हो किस जगह घाम हो

मुस्कराये सदा पर धरा इसलिए
जिस जगह मैं झरूँ उस जगह तुम खिलो।

प्रेम-पथ हो न सूना कभी इसलिए
जिस जगह मैं थकूँ उस जगह तुम चलो।

एक दिन काल-तम की किसी रात ने
दे दिया था मुझे प्राण का यह दिया
धार पर यह जला पार पर यह जला
वार अपना हिया विश्व का तम पिया

पर चुका जा रहा साँस का स्नेह अब
रोशनी का पथिक चल सकेगा नहीं
आँधियों के नगर में बिना प्यार के
दीप यह भोर तक जल सकेगा नहीं

पर जले स्नेह की लौ सदा इसलिए
जिस जगह मैं बुझूँ उस जगह तुम जलो।

प्रेम-पथ हो न सूना कभी इसलिए
जिस जगह मैं थकूँ उस जगह तुम चलो।

रोज ही बाग में देखता हूँ सुबह,
धूल ने फूल कुछ अधखिले चुन लिये
रोज ही चीखता है निशा में गगन—
'क्यों नहीं आज मेरे जले कुछ दिये ?

इस तरह प्राण ! मैं भी यहाँ रोज ही
जल रहा हूँ किसी बूँद की प्यास में
जी रहा हूँ धरा पर, मगर लग रहा
कुछ छिपा कहीं है दूर आकाश में,

छिप न पाये कहीं प्यार पर इसलिए
जिस जगह मैं छिपूँ उस जगह तुम मिलो।

प्रेम-पथ हो न सूना कभी इसलिए
जिस जगह मैं थकूँ उस जगह तुम चलो।

प्रेम का पंथ सूना अगर हो गया
रह सकेगी बसी कौन-सी फिर गली ?
यदि खिला प्रेम का ही नहीं फूल तो
कौन है जो हँसे फिर चमन में कली ?

प्रेम को ही न जग में मिला मान तो
यह धरा यह भुवन सिर्फ श्मशान है
आदमी एक चलती हुई लाश है
और जीना यहाँ एक अपमान है

आदमी प्यार सीखे कभी इसलिए
रात दिन मैं जलूँ, रात दिन तुम जलो।

प्रेम-पथ हो न सूना कभी इसलिए
जिस जगह मैं थकूँ, उस जगह तुम चलो





प्रेम को न दान दो न दो दया
प्रेम तो सदैव ही समृद्ध है।

प्रेम है कि ज्योति-स्नेह एक है
प्रेम है कि प्राण-देह एक है
प्रेम है कि विश्व गेह एक है
प्रेमहीन गति प्रगति विरुद्ध है।
प्रेम तो सदैव ही समृद्ध है॥

प्रेम है इसीलिए दमित दनुज
प्रेम है इसीलिए विजित दनुज,
प्रेम है इसीलिए अजित मनुज
प्रेम के बिना विकास वृद्ध है।
प्रेम तो सदैव ही समृद्ध है॥

नित्य व्रत करे कि नित्य तप करे
नित्य वेद-पाठ नित्य जप करे,
नित्य गंग धार में तिरे-तरे
प्रेम जो न तो मनुज अशुद्ध है।
प्रेम तो सदैव ही समृद्ध है॥

दुश्मन को अपना हृदय जरा देकर देखो !

७

यह नफ़रत की बारूद न बिखराओ साथी !
यह मुर्दों का ज़हरीला नारा बन्द करो
जो प्यार तिजोरी-सेफ़ों में है तड़प रहा
उसके बन्धन खोलो उसको स्वच्छन्द करो।

मृत मानवता जिन्दगी माँगती है तुम से
दो बूँद स्नेह की उसके प्राणों में डालो
आदम का जो यह स्वर्ग हो रहा है मरघट
जाओ ममता का एक दिया उसमें बालो।

निर्माण घृणा से नहीं प्यार से होता है
सुख-शान्ति खड्ग पर नहीं फूल पर चलते हैं
आदमी देह से नहीं नेह से जीता है
बम्बों से नहीं बोल से बज्र पिघलते हैं।

तुम डरो न आगे आओ निज भुज फैलाओ
है प्यार जहाँ, तलवार वहाँ झुक जाती है
पतवार प्रेम की छू जाये जिस किश्ती को
मँझधार, पार उसको खुद पहुँचा आती है।

जिसके अधरों पर गीत प्रेम का जीवित है
वह हँसकर तूफानों को गोद खिलाता है
जिसके सीने में दर्द छिपा है दुनियाँ का
सेनाओं से बढ़कर वह हाथ मिलाता है ।

कितना ही क्यों न बड़ा हो घाव हृदय में पर
सच कहता हूँ यह प्यार उसे भर सकता है
कैसा ही बागी—दुश्मन हो आदमी मगर
बस एक मधु का तार कैद कर सकता है ।

कितना ही ऊबड़-खाबड़ हो रास्ता किन्तु
यह प्यार फूल-सा तुम्हें उठा ले जायेगा
कैसी ही भीषण अँधियारी हो धुँधा-धुन्ध
पर एक स्नेह का दीप सुबह ले आएगा ।

मैं इसीलिए अक्सर लोगों से कहता हूँ
जिस जगह बँटे नफ़रत वा प्यार लुटाओ तुम
जो चोट करे तुम पर उसके चूम लो हाथ
जो गाली दे उसको आशीष पिन्हाओ तुम ।

तुम शान्ति नहीं ला पाय युद्धों के द्वारा
अब फेंक जरा तलवार प्यार लेकर देखो
सच मानो निश्चय विजय तुम्हारी ही होगी
दुश्मन को अपना हृदय जरा देकर देखो ।





जलाओ दिये पर रहे ध्यान इतना
अँधेरा धरा पर कहीं रह न जाये।

नई ज्योति के धर नये पंख झिलमिल
उड़े मर्त्य मिट्टी गगन-स्वर्ग छू ले
लगे रोशनी की झड़ी झूम ऐसी
निशा की गली में तिमिर राह भूले
खुले मुक्ति का वह किरन-द्वार जगमग
उषा जा न पाये निशा आ न पाये।

जलाओ दिये पर रहे ध्यान इतना
अँधेरा धरा पर कहीं रह न जाये।

सृजन है अधूरा अगर विश्व भर में
कहीं भी किसी द्वार पर है उदासी
मनुजता नहीं पूर्ण तब तक बनेगी
कि जब तक लहू के लिए भूमि प्यासी
चलेगा सदा नाश का खेल यूँ ही
भले ही दिवाली यहाँ रोज आये।

जलाओ दिये पर रहे ध्यान इतना
अँधेरा धरा पर कहीं रह न जाये।

मगर दीप की दीप्ति से सिर्फ जग में
नहीं मिट सका है धरा का अँधेरा
उतर क्यों न आयें नखत सब गगन के
नहीं कर सकेंगे हृदय में उजरा
कटेगी तभी यह अँधेरी घिरी जब
स्वयं धर मनुज दीप का रूप आये।

जलाओ दिये पर रहे ध्यान इतना
अँधेरा धरा पर कहीं रह न जाये।



मूर्ख पुजारी है वह जो कहता

१०

मूर्ख पुजारी है वह जो कहता है मन्दिर ईश्वर का घर,
मुल्ला भी वह बहक गया जो कहता वह मस्जिद के अन्दर,
मन्दिर मस्जिद में ही उसका ईश्वर और खुदा होता तो
मन्दिर में बन सकती मस्जिद, मस्जिद में बन सकता मन्दिर।

खोजने तुमको गया

११

खोजने तुमको गया मठ में विकल अरमान मेरा,
पत्थरों पर झुक न पाया पर सरस शिशु-ध्यान मेरा
जन-अनादर की चरण रज किन्तु जब सिर पर चढ़ाई
मिल गया मुझको सहज उस धूल में भगवान मेरा।

दूर

अब न तुम ही मिले राह पर तो मुझे
स्वर्ग भी गर धरा पर मिले—व्यर्थ है!

दीप को रात भर जब सुबह मिल गई
चिर कुमारी उषा को किरन-पालकी
सूर्य ने चल दिवस भर अमित-पन्थ पर
रात, लट चूमती चाँद के गाल की,
जिन्दगी में सभी को सदा मिल गया
प्राण का मीत औ' सारथी राह का।
एक मैं ही अकेला जिसे आज तक
मिल न पाया सहारा किसी बाँह का
बेसहारे हुई अब कि जब जिन्दगी
साथ संसार सारा चले—व्यर्थ है!

अब न तुम ही मिले राह पर तो मुझे
स्वर्ग भी गर धरा पर मिले—व्यर्थ है।

एक ही कील पर घूमती है धरा,
एक ही डोर से बस बँधा है गगन
एक ही साँस में ज़िन्दगी कैद है
एक ही तार से बुन गया है कफ़न
इस तरह हर किसी के नयन में यहाँ
एक ऐसी नमी पावस खामोश है
प्यार संसार भर का मिले क्यों न पर
आदमी को न उसके बिना होश है
होश ही आज अपना नहीं अब मुझे
फूल बन उर्वशी भी मिले—व्यर्थ है!

जब न तुम ही मिले राह पर तो मुझे
स्वर्ग भी गर धरा पर मिले—व्यर्थ है॥

नाम के इस नगर में तुम्ही एक थे
खोजता मैं जिसे आ गया था यहाँ,
तुम न होते अगर तो मुझे क्या पता
तन भटकता कहाँ, मन भटकता कहाँ
वह तुम्हीं हो कि जिसके लिए आज तक
मैं सिसकता रहा शब्द में, गान में
वह तुम्हीं हो कि जिसके बिना धाम बना
मैं भटकता रहा रोज धामधाम में
पर तुम्हीं अब न मेरी पियो प्यास तो
घाट पर भी हिमालय गले—व्यर्थ है!

जब न तुम ही मिले राह पर तो मुझे
स्वर्ग भी गर धरा पर मिले—व्यर्थ है॥

न से भी बहुत दिन किया प्यार पर
ई दिल का कभी मुस्कराया नहीं
ाँद से भी बहुत मन लगाया मगर
ाण को चैन मेरे न आया कहीं
किन्तु उस रोज़ तुमने पुकारा कि जब
मैं पड़ा था चिता पर, मगर गा उठा
एक जादू न जाने किया कौन-सा
आग की गोद में मधु मुस्का उठा
यों मुझे रोशनी अब तुम्हीं दो न तो—
पास सारे सितारे जलें —व्यर्थ है।

जब न तुम ही मिले राह पर तो मुझे
स्वर्ग भी गर धरा पर मिले—व्यर्थ है।।

खोजने जब चला मैं तुम्हें विश्व में
मन्दिरों ने बहुत कुछ भुलावा दिया
और पर यह हुई, उम्र की दौड़ में
ध्यान मैंने न कुछ पत्थरों का किया
पर्वतों ने झुका शीश चूमे चरण
बाँह डाली कभी न गले में गगन
एक तस्वीर तेरी लिये किन्तु मैं
साफ दामन बचाकर गया ही निकल
और फिर भी न यदि तुम मिला तो कहो
जन्म किस अर्थ है मृत्यु किस अर्थ है।

जब न तुम ही मिले राह पर तो मुझे
स्वर्ग भी गर धरा पर मिले—व्यर्थ है।।

१३

मुझे न करना याद, तुम्हारा आँगन गीला हो जायेगा।
रोज़ रात को नींद चुरा ले जायेगी पपिहों की टोली
रोज़ प्रात को पीर जगाने आयेगी कोयल की बोली
रोज़ दुपहरी में तुमसे कुछ कथा कहेंगी सूनी गलियाँ
रोज़ साँझ को आँख भिगो जायेंगी कुछ मुरझाई कलियाँ
यह सब होगा पर न दुःखी तुम होना मेरी सुख-संगिनी।
तुम सिसकोगी यहाँ वहाँ यह पग बोझीला हो जायगा।
मुझे न करना याद तुम्हारा आँगन गीला हो जायगा॥

कभी लगेगा तुम्हें कि जैसे दूर कहीं गाता हो कोई
कभी तुम्हें मालूम पड़ेगा आँचल छू जाता हो कोई
कभी सुनोगी तुम कि कहीं से किसी दिशा ने तुम्हें पुकारा
कभी दिखेगा तुम्हें कि जैसे मान कर रहा हो हर तारा
पर न तड़पना पर न बिलखना पर न आँख भर भर लाना तुम
तुम्हें तड़पता देख विरह कुछ और हठीला हो जायेगा!
मुझे न करना याद तुम्हारा आँगन गीला हो जायेगा॥

याद सुखद उसकी बस जग में होकर भी जो दूर, पास हो,
किन्तु व्यर्थ उसकी सुधि करना जिसके मिलने की न आस हो,
मैं अब इतनी दूर कि जितनी सागर से मरुथल की दूरी
और अभी क्या ठीक कहाँ ले जाये जीवन की मजबूरी
गीत-हंस के हाथ इसलिए मुझको मत भेजना संदेशा
मुझको मिटता देख तुम्हारा स्वर दर्दीला हो जायेगा !
मुझे न करना याद तुम्हारा आँगन गीला हो जायेगा ॥

मैंने कब यह चाहा मुझको याद करो, जग को तुम भूलो ?
मेरी यही रही ख्वाहिश बस मैं जिस जगह रुकूँ तुम फूलो
शूल मुझे दो जिससे वे चुभ सकें न किसी अन्य के पग में
और फूल लाओ—वे लाओ बिखराओ जन-जन के मग में
यही प्रेम की रीति कि सब कुछ देता, किन्तु न कुछ लेता है
यदि तुमने कुछ लिया प्रेम का बन्धन ढीला हो जायेगा !
मुझे न करना याद तुम्हारा आँगन गीला हो जायेगा ॥





क्या कहा ?— सत्य बस ब्रह्म और सब मिथ्या है
यह सृष्टि चराचर केवल छाया है भ्रम है
है सपन-सा निस्सार सकल मानव-जीवन
यह नाम रूप-सौन्दर्य अविद्या है तम है ?

मैं कैसे कह दूँ धूल मगर इस धरती को
जब सब कुछ रोज मुझे यह गोद खिलाती है
मैं कैसे कह दूँ मिथ्या है सम्पूर्ण सृष्टि
हर एक कली जब मुझे देख मुसकाती है!

जीवन को केवल सपना मैं कैसे समझूँ
जब नित्य सुबह का सूरज मुझे जगाता है
कैसे मानूँ निर्माण हमारा व्यर्थ विफल
जब रोज हिमालय ऊँचा होता जाता है।

यह ज्ञान तुम्हीं सोचो समझो परखो जानो
मुझको तो इस मिट्टी का कण-कण प्यारा है
यह प्यार मुझे जग से जीवन के क्षण क्षण से
कण-कण पर मैंने अपना नेह उतारा है!

मुस्काता है जब चाँद निशा की बाहों में
सच मानो तब मुझ पर खुमार छा जाता है,
बाँसुरी बजाता है कोयल की जब सावन
कोई साँवरिया मुझे याद आ जाता है!

निज धानी घूँघट उठा-उठा कर नई फ़सल
जब दूर खेत से मुझको पास बुलाती है
तब मेरे तन का रोम रोम गा उठता है
औ' साँस-साँस मेरी कविता बन जाती है!

तितली के पंख लगा जब उड़ता है बसन्त
तरु-तरु पर बिखराता कुंकुम परिमल पराग
तब मुझे जान पड़ता कि धूल की दुलहन का
'मक्षर' से ज्यादा अमर है सदा सुहाग।

बुलबुल के मस्त तराने की स्वर-धारा में
जब मेरे मन का सूनापन खो जाता है
संगीत दिखाई देता है साकार मुझे
तब तानसेन मरा जीवित हो जाता है।

जब किसी गगनचुम्बी गिरि की चोटी पर चढ़
थक-कर फिर फिर आती है मेरी विफल दृष्टि,
तब वायु कान में चुपके से कह जाती है
"रे किसी कल्पना से है छोटी नहीं सृष्टि।

कलकल ध्वनि करती पास गुजरती जब नदियाँ
है स्वयं छनक उठती तब प्राणों की पायल
फैलाता है जब सागर मिलनातुर बाँहें
तब लगता सच एकान्त नहीं, सच है हलचल।

अँधियारी निशि में बैठ किसी तरु के ऊपर
जब करता है पपिहा अपना 'पी' का प्रकाश
तब सच मानो मालूम यही होता मुझको
गा रहे विरह का गीत हमारे सूरदास!

जब भाँति भाँति के पशु-पखेरू बड़े सुबह
निज गायन से करते मुखरित उपवन-कानन
सम्मुख बढ़े सब दिखलाई देते मुझको
तुलसी गाते निज विनय-पत्रिका रामायण।

पतझार एक ही झोंक झकोरे में आकर
जब नष्ट भ्रष्ट कर देता बगिया का सिंगार
तब तिनका मुझ से कहता है बस इसी तरह
प्राचीन बनेगा नव-संस्कृति के लिए द्वार।

जब बैठ किसी झुरमुट में दो भोले भोले—
प्रेमी खोलते हृदय निज लेकर प्रेम नाम
तब लता-जाल से मुझे निकलते दिखलाई—
देते हैं अपने राम जानकी पूर्णकाम।

अपनी तुतली बातों से चंचल शिशु कोई
जब पकड़ लेता है मेरी आत्मा के अन्दर
तब मुझको लगता स्वर्ग यहीं है आसपास
सौ बार मुक्ति से बढ़कर है बचपन सुन्दर!

मिल जाता है जब कभी लगा सम्मुख पथपर
भूखे-भिखमंगों नंगों का सूना बजार
तब मुझे जान पड़ता कि तुम्हारा ब्रह्म स्वयं
है ताज रहा धरती पर मिट्टी का मजार।

यह सब असत्य है तो फिर बोलो सच क्या है—
वह प्रश्न कि जिसको कभी नहीं तुमने जाना ?
जो काम न आया कभी तुम्हारे जीवन में
जो बुन न सका यह साँसों का ताना-बाना ।

भाई ! यह दर्शन सन्त महन्तों का है बस
तुम दुनिया वाले हो दुनिया से प्यार करो
जो सत्य तुम्हारे सम्मुख भूखा नंगा है
उसके गाओ तुम गीत उसे स्वीकार करो ।

यह बात कही जिसने उसको मालूम न था
वह समय आ रहा है कि मरेगा जब ईश्वर
होगी मन्दिर में मूर्ति प्रतिष्ठित मानव की
औ' ज्ञान ब्रह्म को नहीं मनुज को देगा स्वर ।



१५

जब सूना सूना तुम्हें लगे जीवन अपना
तुम मुझे बुलाना—मैं गुंजन बन आऊँगा !

जिस दिन तक बगिया में भौंरों की रहे भीड़
उस दिन तक तुम मत आने देना मुझे पास
जिस दिन तक बुलबुल गाती रहे बहारों को
उस दिन तक मत पूछना कि मैं क्यों हूँ उदास
लेकिन जिस दिन पथ पर सपनों की उड़े धूल
तब मुझे बुलाना—मैं चन्दन बन आऊँगा !
जब सूना सूना तुम्हें लगे जीवन अपना
तुम मुझे बुलाना—मैं गुंजन बन आऊँगा !!

जब गूँज रहा हो चाँद रात के सूने वास,
तब याद न करना इस कुटिया अँधियारी को
मधुऋतु मधुबन में जब सिन्दूर लुटाती हो
बिसरा देना तब इस विधवा फुलवारी को,
लेकिन आकर पतझार तुम्हें जब झकझोरे
तब मुझे बुलाना—मैं सावन बन आऊँगा !
जब सूना सूना तुम्हें लगे जीवन अपना
तुम मुझे बुलाना—मैं गुंजन बन आऊँगा !!

जब तक नर्गिस की पाँति नयन में शरमाये,
तब तक न समझना तुम इन आँखों की भाषा
मुस्कायें अधरों पर जब तक फूले गुलाब
तब तक न जानना तुम मैं हूँ कितना प्यासा
पर जब कोई अंगार कपोलों को चूमे
तब मुझे बुलाना—मैं चुम्बन बन जाऊँगा !
जब सूना सूना तुम्हें लगे जीवन अपना
तुम मुझे बुलाना—मैं गुंजन बन जाऊँगा !!

हो मठ में जब तक गंध दास-बांदियासों की
मेरी पूजा तब तक तुम ठुकराते रहना
गीतों में गजरों से जब तक तुम सजे रहो
मेरे आँसू तब तक तुम ठुकराते रहना
बह जाये मठ पर जब श्रृंगार बिखर जाये
तब मुझे बुलाना—मैं दर्पण बन जाऊँगा !
जब सूना सूना तुम्हें लगे जीवन अपना
तुम मुझे बुलाना—मैं गुंजन बन जाऊँगा !!

जब प्यार लुटाने निकलो तुम संसार बीच
मेरे अनाथ मन को तब याद नहीं आना
वरदान बाँटने आओ जब तुम दुनियाँ में
मेरे भिक्षुक-सपनों पर खाक लगा जाना
पर जब ठुकराओ प्यार किसी का तुम जग में
तब मुझे बुलाना—मैं पाहन बन जाऊँगा !
जब सूना सूना तुम्हें लगे जीवन अपना
तुम मुझे बुलाना—मैं गुंजन बन जाऊँगा !!

मेरा मन तो है क़ैद कफ़न के घूँघट में
तन मरघट के हाथों का एक खिलौना है
ये मेरी साँसें ही मेरी जंजीरें हैं
कुछ ज्ञात नहीं किस जगह मुझे कब सोना है
इस पर भी यदि शृंगार तुम्हें मेरा भाये
तो मुझे बुलाना—मैं दरपन बन जाऊँगा ।
जब सूना सूना तुम्हें लगे जीवन अपना
तुम मुझे बुलाना—मैं गुंजन बन जाऊँगा ।।



१६

तुम्हारे बिना आरती का दिया यह
न बुझ पा रहा है न जल पा रहा है।

भटकती निशा कह रही है कि तम में
दिये से किरन फूटना ही उचित है
शलभ चीखता पर बिना प्यार के तो
विधुर साँस का टूटना ही उचित है
इसी ग्रम में रात का यह मुसाफ़िर
न रुक पा रहा है, न चल पा रहा है।
तुम्हारे बिना आरती का दिया यह
न बुझ पा रहा है, न जल पा रहा है।

मिलन ने कहा था कभी मुस्करा कर
हँसो फूल बन विश्व भर को हँसाओ
मगर कह रहा है विरह अब सिसक कर
झरो रात-दिन अश्रु के दाग़ उठाओ
इसीसे नयन का विकल जल-कुसुम यह
न झर पा रहा है न खिल पा रहा है।
तुम्हारे बिना आरती का दिया यह
न बुझ पा रहा है न जल पा रहा है।

कहाँ दीप है जो किसी उर्वशी की
किरन-उँगलियों को छुये बिन जला हो ?
बिना प्यार पाये किसी मोहिनी का
कहाँ है पथिक जो निशा में चला हो ?
अचंभा अरे कौन फिर जो तिमिर यह
न गल पा रहा है न ढल पा रहा है।

तुम्हारे बिना आरती का दिया यह
न बुझ पा रहा है न जल पा रहा है।

किसे है पता धूल के इस नगर में
कहाँ मृत्यु वरमाल लेकर खड़ी है ?
किसे ज्ञात है प्राण को लौ छिपाये
चिता में छिपी कौन-सी फुलझड़ी है ?
इसीसे यहाँ राज हर जिन्दगी का
न छिप पा रहा है न खुल पा रहा है।

तुम्हार बिना आरती का दिया यह
न बुझ पा रहा है न जल पा रहा है।





एक पाँव चल रहा अलग अलग
और दूसरा किसी के साथ है!

एक साँस मौत के क़रीब है,
एक साँस ज़िन्दगी के पास है
एक फूल में छिपी हुई बहार
एक फूल में खिज़ाँ उदास है

इसलिए विषाद में विलास में—

एक पाँव चल रहा अलग अलग
और दूसरा किसी के साथ है!

एक बार कर रही सिंगार सेज
एक बार भर रही चिता अँगार,
एक राह आ रही हैं डोलियाँ,
एक राह अर्थियाँ चलीं हज़ार,

इसलिए पिया के प्रेम-पन्थ पर—

एक पाँव चल रहा अलग अलग
और दूसरा किसी के साथ है!

इक दिया जला कि जल उठी सुबह
इक दिया बुझा कि रात हो गई,
एक शह लगी कि ढह गया किला,
एक शह लगी कि मात हो गई,

इसलिए अनादि हार-जीत में—

एक पाँव चल रहा अलग अलग
और दूसरा किसी के साथ है!

इक हवा चली कि खिल उठा चमन
इक हवा चली कि सब उजड़ गया
एक पग उठा कि राह मिल गई,
एक पग उठा कि पथ बिछुड़ गया

इसलिए मिलन विरह की बाट में—

एक पाँव चल रहा अलग-अलग
और दूसरा किसी के साथ है!

बात कुछ हुई कि हँस पड़े अधर
बात कुछ हुई कि आँख रो उठी,
बूँद इक ढली कि धुल गया गुबार,
बूँद इक ढली कि दिल भिगा उठे,

इसलिए असंख्य अश्रु-हास में—

एक पाँव चल रहा अलग-अलग
और दूसरा किसी के साथ है!

एक डाल इस तरह खिली-फली
कि एक-एक पात फूल बन गया
एक डाल इस क़दर मगर लुटी
कि एक-एक फूल धूल बन गया

इसलिए सिंगार में संहार में—

एक पाँव चल रहा अलग-अलग
और दूसरा किसी के साथ है!

एक वह लहर उठी समुद्र में
कि सुध-असुध जहाज पार हो गया
एक वह लहर चली कगार से
कि नाव के समीप पार खो गया,

इसलिए कगार-धार-धार पर—

एक पाँव चल रहा अलग-अलग
और दूसरा किसी के साथ है!

एक ईंट पर खड़ा हुआ महल
एक ईंट पर खड़ा 'मसान' है,
एक बार जी रही हरेक साँस
एक बार मर रहा जहान है,

इसलिए जनम-मरण के गाँव में—

एक पाँव चल रहा अलग - अलग
और दूसरा किसी के साथ है!

कहते कहते थके

१८

कहते कहते थके कल्प युग, वर्ष, मास दिन,
पर जीवन की राम-कहानी अभी शेष है !

सौ-सौ बार उठा जुड़कर सपनों का मेला,
सौ-सौ बार गया मंजिल तक प्राण अकेला,
बूँद बूँद घन हुए हजारों बार नयन के,
ढहे करोड़ों बार महल चाँदी-कंचन के
पर है यह इन्सान कि फिर भी जिसके मन में
नीड़ बसाने की नादानी अभी शेष है !

कहते कहते थके कल्प, युग, वर्ष, मास, दिन
पर जीवन की राम-कहानी अभी शेष है !

छिन छिन क्षीण हो रहा श्वास-कोष जीवन का,
छिन छिन बढ़ता जाता है व्यापार मरण का,
टूट जा रहे टूक टूक सब चाँद-सितारे,
बने जा रहे मरु दिन - दिन सागर-सरि सारे,
पर है यह आश्चर्य कि मिट्टी की आँखों में
एक बूँद आँसू का पानी अभी शेष है ।

कहते कहते थके कल्प युग, वर्ष मास दिन
पर जीवन की राम-कहानी अभी शेष है !

'आज' आज का वर्तमान कल का अतीत है
और भविष्यत् सिर्फ़ भूत का मूक गीत है
आता बनकर जन्म मरण बन जाता हर पल
बस चुटकी भर खाक जिन्दगी भर की हलचल
लेकिन घुटी-घुटी प्राणों की हर धड़कन में
किसी चोट की पीर पुरानी अभी शेष है।

कहते कहते थके कल्प युग, वर्ष मास दिन
पर जीवन की राम-कहानी अभी शेष है !





इस तरह तय हुआ साँस का यह सफ़र
ज़िन्दगी थक गई, मौत चलती रही।

एक ऐसी हँसी हँस पड़ी धूल यह
साथ इन्सान की मुस्कराने लगी,
तान ऐसी किसी ने कहीं छेड़ दी
आँख रोती हुई गीत गाने लगी
एक नाज़ुक किरन छू गई इस तरह
गुद-गुद प्राण का दीप जलने लगा
एक आवाज़ आई किसी ओर से
हर मुसाफ़िर बिना पाँव चलने लगा
रूप के गाँव का पर मिला छोर यूँ—
देह बढ़ती रही उम्र ढलती रही।

इस तरह तय हुआ साँस का यह सफ़र
ज़िन्दगी थक गई मौत चलती रही।

एक दिन देखता हूँ कि रूठी हुई
चाँदनी चन्द्रमा से खड़ी दूर है,
एक दिन यह हुआ धूल की चोट से
एक पाषाण का दिल हुआ चूर है,
एक दिन आँसुओं ने कहा आँख से
'रो न हम जायेंगे कल बदल कर कफ़न'
एक दिन एक शोला शलभ दीप से
'चूम लूँ मैं तुझे तब मुझे कर दफ़न',
पर सुनी अनसुनी बात ऐसे हुई
रुठ सोया शलभ, लौ मचलती रही।

इस तरह तय हुआ साँस का यह सफ़र
ज़िन्दगी थक गई, मौत चलती रही!

एक दिन कह रही थी भ्रमर से कली
'ओठ झूठे किये हैं मुझे छू न छू'
कह रहा था भ्रमर 'सुन अरी बावली
निष्कलुष मैं बनूँ तो मुझे चूम तू'
आ गया एक झोंका तभी उस तरफ़
हिल उठी डाल तो भू गगन हिल गये
कुनमुनाई-सचाई कली तो बहुत
आप ही आप लेकिन अधर मिल गये,
मस्त ऐसे हुआ उस मिलन का मगर
दिन सिसकता रहा रात ढलती रही।

इस तरह तय हुआ साँस का यह सफ़र
ज़िन्दगी थक गई, मौत चलती रही!

एक दिन ज़िन्दगी की कड़ी धूप में
दो पखेरू मिले मुक्त नभ के तले
कुछ न बोले, न बोले न कुछ बात की
हो गया प्यार लेकिन नयन जब मिले
ओठ ज्यों ही उठे तो नियति हँस उठी
आँधियाँ बन घटा तम बरसने लगा,
छूट गया हाथ से हाथ भीगा हुआ,
गालियाँ मार संसार हँसने लगा
और फिर यूँ कटी वह विरह की निशा
स्नेह बुझता रहा याद जलती रही।

इस तरह तय हुआ साँस का यह सफ़र
ज़िन्दगी थक गई मौत चलती रही।

एक दिन एक आया पथिक द्वार पर
रुक गया, एक-दो घूँट पानी पिया
पथ-सफ़र का लिया साथ सामान सब
एक फेंकी विकल दृष्टि औ चल दिया
उस दिवस से मगर एक तस्वीर सी
आयु की भीति पर रोज़ खिंचने लगी,
रंग भरने लगे जागकर रात दिन
मोतियों से गली-गैल सिंचने लगी,
किन्तु पूरा हुआ चित्र वह इस तरह
रंग हुए एक सब, छवि बदलती रही।

इस तरह तय हुआ साँस का यह स
ज़िन्दगी थक गई, मौत चलती र

एक दिन एक तारा गिरा टूटकर
एक उजड़े हुये नीड़ ने रख लिया
फूल ने मुस्कराकर तभी यह कहा—
'यह बुझा है दिया क्यों इसे दिल दिया?'
बोलने तब लगा नीड़ का एक तृण
'हर दुखी को दुखी से सदा प्यार है,
आँसुओं के लिए गोद बस धूल है
फूल को तो धरे शीश संसार है।'
किन्तु झगड़ा खतम इस तरह यह हुआ
फूल झरता रहा धूल खिलती रही।

इसी तरह तय हुआ साँस का यह सफ़र
ज़िन्दगी थक गई, मौत चलती रही।

एक दिन एक बोली पिटी गोट यूँ—
एक मौक़ा अगर तू मुझे और दे
मान सच यह कि बाज़ी बदल दूँ अभी
हार को जीत से जीत को हार से
सुन खिलाड़ी प्रथम बार झिझका-जरा
फिर बदल गोट वह चाल चलने लगा
जब लगी मचल सब तब बहुत देर में
खेल का कुछ तराजू बदलने लगा
पर हुआ खेल वह भी खतम इस तरह
गोट पिटती रही चाल चलती रही।

इस तरह तय हुआ साँस का यह सफ़र
ज़िन्दगी थक गई मौत चलती रही।

२०

भोर हुआ
धूप चढ़ी
घोर हुआ
साँझ बढ़ी
यूँही यूँही एक दिन निकल गया।
प्राण तपे
प्यास जगी
मेघ घिरे,
झड़ी लगी
यूँही यूँही हिम हिमाद्रि गल गया।
स्नेह चुका,
साँस थकी
तिमिर झुका
ज्योति बिकी
यूँही यूँही एक दीप जल गया।
रूप हँसा
राग रचा
मिलन सजा
विरह बचा
यूँही यूँही एक स्वप्न छल गया।

जन्म रोया
मृत्यु हँसी
आयु लुटी
धूल बसी
यूँही यूँही बस मनुष्य बस गया।



२१

आदमी है मौत से लाचार
जी रहा है इसलिए संसार।

बूँद बनने के लिए बेसब घन है,
धूल चुनने के लिए व्याकुल सुमन है
ढल रहा है चाँद निशि की बाँह में,
गोद में तम को लिए चंचल किरन है
प्राण! नश्वर है सकल शृंगार
इसलिए सौन्दर्य है सुकुमार।
आदमी है मौत से लाचार,
इसलिए संसार॥

बज रही सरगम मरण की भू गगन में,
है चिता की राख लिपटी हर चरण में
हँस रहा हर श्वास पर पतझर समय का
एक विष की बूँद है सबके नयन में,
प्राण! जीवन क्या, प्रणय क्या प्यार
एक आँसू और एक अंगार।
आदमी है मौत से लाचार,
जी रहा है इसलिए संसार॥

धूल को मरघट सदा प्यारा लगा है
अमृत को पनघट सदा खारा लगा है
पल रहा है गीत आँसू की डगर में,
मृत्यु से हारा सदा जीवन-समर में,

मत कहो रण-क्षेत्र है संसार
हारता आया मनुज हर बार।

आदमी है मौत से लाचार
जी रहा है इसलिए संसार ॥



२२

यह प्रवाह है यह न रुका है यह न रुकेगा।

आने दो अवरोध पर्वतों की काया पर
लगने दो गिरि चट्टानों की हाट बाट पर
उठने दो भूचाल आँधियों के आँगन से
झरने दो उल्काओं की बरसात गगन से,
यह न मौसमी जल गड्ढों में जो बँध जाये,
यह प्रवाह है यह न रुका है यह न रुकेगा।

कुछ परवाह नहीं जो अम्बर में हलचल है
चिन्ता क्या जो सम्मुख मुरदों का दल बल है,
पीस रहा विध्वंस, ढह रहा संस्कृति का गढ़,
मानवता की लाश रक्त में पड़ी रही सड़,
यह न मरण का दूत, थके जो इस बस्ती में,
यह विकास है यह न थका है यह न थकेगा।

मुट्ठी में भूकम्प शीश पर मेरु उठाये
नयनों में निर्माण कण्ठ में राग बसाये
एकाकी पाथेयहीन तन मन चिर जर्जर,
स्वर्ग छीन लाने को जो बढ़ रहा निरन्तर
उसे झुकाने उसे मिटाने की सोचो मत
वह मनुष्य है वह न झुका है वह न झुकेगा
वह भविष्य है, वह न मिटा है वह न मिटेगा
वह विकास है वह न थका है वह न थकेगा
वह प्रवाह है वह न रुका है वह न रुकेगा।





सूनी सूनी जिन्दगी की राह है
भटकी भटकी हर नजर-निगाह है
राह को सँवार दो
निगाह को निखार दो,
आदमी हो तुम कि उठो आदमी को प्यार दो,
दुलार दो।
रोते हुए आँसुओं की आरती उतार दो।

तुम हो एक फूल कल जो धूल बनके जायेगा,
आज है हवा में कल जमीन पर ही आयेगा
चलते वक्त बाग बहुत रोयेगा—रुलायेगा
खाक के सिवा मगर न कुछ भी हाथ आयेगा,
जिन्दगी की खाक लिये हाथ में
बुझते-बुझते सपने लिये साथ में
रुक रहा हो जो उसे बयार दो,
चल रहा हो उसका पथ बुहार दो।
आदमी हो तुम कि उठो आदमी को प्यार दो
दुलार दो।

जिन्दगी यह क्या है—बस सुबह का एक नाम है
पीछे जिसके रात है औ' आगे जिसके शाम है
एक ओर छाँह सघन एक ओर घाम है
चलना-झुमना झुमना-जमना सिर्फ़ जिसका काम है
न कोई रोक-थाम है

खौफ़नाक-ग़ारो-बियाबान में
मरघटों के मुरदा सुनसान में,

बुझ रहा हो जो उसे अंगार दो
जल रहा हो जो उसे उभार दो
आदमी हो तुम कि उठो आदमी को प्यार दो,
दुलार दो।

जिन्दगी की आँखों पर मौत का खुमार है,
और प्राण को किसी पिया का इन्तज़ार है
मन की मनचली कली तो चाहती बहार है
किन्तु तन की डाली को पतझर से प्यार है
क़रार है

पतझर के पीले-पीले वेश में
आँधियों के काले-काले देश में

खिल रहा हो जो उसे सिंगार दो,
झर रहा हो जो उसे बहार दो
आदमी हो तुम कि उठो आदमी को प्यार दो
दुलार दो।

प्राण एक गायक है, दर्द एक तराना है,
जन्म एक तार है जो मौत को बजाना है
स्वर ही रे ! जीवन है साँस तो बहाना है,
प्यार एक गीत है जो बार बार गाना है,
सब को दुहराना है

साँस की सिसक रही सितार पर,
आँसुओं के गीले-गीले तार पर
चुप जो हो उसे जरा पुकार दो,
गा रहा हो जो उसे मल्हार दो
आदमी हो तुम कि उठो आदमी को प्यार दो
दुलार दो।

एक चाँद के बगैर सारी रात स्याह है
एक फूल के बिना चमन सभी तबाह है
जिन्दगी तो खुद ही एक आह है कराह है
प्यार भी न जो मिले तो जीना फिर गुनाह है
धूल के पवित्र नेत्र-नीर से
आदमी के दर्द दाह पीर से,
जो घृणा करे उसे बिसार दो,
प्यार करे उस पै दिल निसार दो,
आदमी हो तुम कि उठो आदमी को प्यार दो,
दुलार दो।
रोते हुए आँसुओं की आरती उतार दो॥



२४

तुम मिलो मुझे मँझधार बीच
इस पार नहीं उस पार नहीं !

मैं भी देखूँ सागर की गहराई क्या है ?
मैं भी जानूँ लहरों की तरुणाई क्या है ?
उबली कहाँ है इस बड़वानल के तल में
है अमृत कहाँ इस क्षार भरे नीले जल में

तुम मिलो मुझे मँझधार बीच
इस पार नहीं उस पार नहीं !

तुम सावन बनकर नयनों के संग रसे-बसो,
तुम धड़कन बनकर प्राणों के संग हिलो-मिलो
बन ताप तपाओ कंचन-सा तन-मन छिन-छिन
बन गीत कण्ठ के गीले आँगन में मचलो

तुम मिलो मौन-मनुहार बीच
इस पार नहीं, उस पार नहीं !

तुम मधुऋतु में खिल पड़ो कुसुम सम गंध-मगन,
तुम पतझर में झर पड़ो पात सम पीत-बरन,
तुम तम में तैरो तन्द्रा की लहरों पर तिर,
तुम किरनों में झूलो चपल-मन, चपल-चरण

तुम मिलो ज्योति-अँधियार बीच
इस पार नहीं, उस पार नहीं !

तुम मधुभरी आँखों में डूब-उतराओ,
तुम सूने घर-द्वारों पर दीप जला आओ
सुख-दुख की माला गूँथ गूँथ दो तुम जीवन
तुम मधु-विष दोनों एक पात्र में भर लाओ,

तुम मिलो मधु-अगार बीच,
इस पार नहीं, उस पार नहीं !

जब चलूँ बनो तुम गति मेरे विचलित पग की,
जब थकूँ बनो तुम मंजिल तब मेरे मग की
जब झुकूँ बनो तुम तब मेरी पूजन प्रतिमा
जब उठूँ बनो तुम नभ-सीमा मेरे दृग की,

तुम मिलो प्राप्ति-परिहार बीच
इस पार नहीं, उस पार नहीं !

निर्जीव धरा पर बरसाओ तुम अमृत-धार
कर्दम कल्मष पर गिरो वज्र सम महाकार,
विशृङ्खल मानवता छन्दाकृति में ढालो,
जड़ता-पशुत्व-वैषम्य करो तुम क्षार-क्षार

तुम मिलो सृजन-संहार बीच
इस पार नहीं, उस पार नहीं !

मैं बाँध सकूँ तुमको जीवन की हलचल में
सुन सकूँ तुम्हारा शब्द भीड़-कोलाहल में
मैं पूज सकूँ तुमको पथ पर चलते-चलते,
मैं देख सकूँ तुमको दिशि-दिशि, नभ जल, थल में,

तुम मिलो सकल संसार बीच
इस पार नहीं उस पार नहीं !





रात के कज्जल-तिमिर में झिलमिलाती
प्रात की कंचन-किरण-सी कौन तुम हो ?

श्याम-पट में स्नात-स्मित-शशि-मुख छिपाये
जुगनुओं के दीप अंचल में बसाये
दामिनी द्युति ज्योति मुक्ताहार पहने
इन्द्रधनुषी कंचुकी तन पर सजाये
बूँद के घुँघरू बजाती पल निमिष पल
लोचनों में मधु-घन-सी कौन तुम हो !
प्रात की कंचन-किरण-सी कौन तुम हो !!

आ रहीं तुम श्वास छोटी आ रही है
गा रहीं तुम मग्न संसृति गा रही है
झुक गई है मृत्यु जीवन की शरण में,
चेतना बन देह बिखरी जा रही है
नैश-तम को ज्योति का वरदान देती,
मरण में जीवन-जागरण-सी कौन तुम हो !
प्रात की कंचन किरण-सी कौन तुम हो !!

कौन हो तुम श्वास में सरगम बनी-सी
गगन के घट में अमृत-मधु की कनी-सी
नाश में निर्माण सुख श्रृंगार की श्री
स्वप्न में सत की सरस छायातनी सी
चरण की गति पंथ की यति सृष्टि की कृति
विश्व में कारण-करण-सी कौन तुम हो।
प्रात की कंचन किरन-सी कौन तुम हो।।

झर रहे शत शत हिमालय अग्नि-कण से
स्वाति चातक पी रहे प्यासी तपन से
एक दुर्बल मौन में संगीत सारा
बँध गया अमरत्व नश्वर एक क्षण से
वेदना में मधुर स्वीकृति-सी किसी की
विरह के पथ पर मिलन-सी कौन तुम हो!
प्रात की कंचन-किरन-सी कौन तुम हो!!

प्राण से परिचित नयन से चिर अपरिचित
मुखरता में मौन चिर चिर मौन मुखरित
ध्यान में बन्दिनि अबन्धिनि धारणा में
शब्द में सीमित स्वरों में चिर असीमित
भृकुटि में लय-सृष्टि अधरों में अमृत-विष
अचित में चेतन-चलन-सी कौन तुम हो।
प्रात की कंचन किरन-सी कौन तुम हो।।





एक बार यदि अपने मदिर मदिर अधरों से
छू लो मेरे तृषित अधर मदिरांगमयी तुम
सच कहता हूँ हँस-हँसकर मैं
जग भर का
विष पी जाऊँगा।

मैं सोया था किसी कफ़न के नीचे थककर
तुमने मुझे जगा, मुझ में संगीत जगाया
कोई चिता छिपाये बैठी थी मेरा तन
तुमने मुझे चुरा मिट्टी के हाथ बिकाया
अब जागी यह प्यास मुझे पी जायेगी जो
यह न बुझी है यह न बुझेगी जीकर मरकर
सौ-सौ बार अमृत बरसा पर यह अतृप्त है
सौ-सौ बार गरल पीकर भी यह जागृत, पर—
एक बार यदि अपने अरुण अरुण अधरों से
पी लो मेरी प्यासी प्यास अनंगमयी तुम
सच कहता हूँ कोटि कोटि
वरदान तृप्ति
के दुहराऊँगा।

मुझको चारों ओर खड़ी है मौत समेटे
पल पल पर हर समय साँप-सा फन फैलाये,
सिर पर धरी हुई पचीस बर्षों की लाशें
युगल-करों में नियति लौह-जंजीर पिन्हाये
इस पर भी पर बन्द जुबाँ करने को मेरी
लाखों ठेकेदार धरम के खड़े कमर कस
अपने दुख में रोना दूर न गा सकता हूँ
मैं कितना मजबूर यहाँ कितना मैं बेबस ?
एक बार पर अपनी गरम गरम बाँहों में
बाँध मुझे लो क्षण भर यदि निर्बन्धमयी तुम
सच कहता हूँ मैं अपनी क्या
युग की मुक्ति
चुरा लाऊँगा ।

मैं दुनिया भर में भूला भटका भरमाया
पर न मिला कोई जो दुर्बलता दुलराता
शूल हँसाकर, फूल रुलाकर गये हजारों
किन्तु न कोई ऐसा जो दुख-दर्द बँटाता
अमरों की आरती उतारी करी प्रशंसा
गये दिवस पर एक बार भी लौट न पाये
जाकर बसा गगन की चन्द्र-घाटियों में भी
पर आँसों के अणु वहाँ भी सूख न पाये
एक बार पर अपनी नमित नमित पलकों में
मेरे अणु सुला लो यदि आनन्दमयी तुम !
सच कहता हूँ मैं अमरों के
कर से अमृत
छिना लाऊँगा !

अपने दुख का गीत लिखा मैंने जब रोकर
दुखी जगत ने हँसकर खूब मजाक उड़ाया,
सुख का गीत रचा जब अपना दर्द दबाकर
निर्दय आलोचक ने कलम-कुठार चलाया
सोच रहा अब एक गीत ऐसा गाना मैं
जिसको सब जग, सब युग-काल रहें दुहराते
इससे पहले है जीवन का प्रश्न कठिन
सब युग वाले शब्द नहीं मुझको मिल पाते,
एक बार पर सजल सजल करुणा-कज्जल निज
भरी स्याही में घोलो शब्दागममयी तुम !
तो सौ जीवन गीत
मरण की छाती पर
मैं लिख जाऊँगा।





भूखी धरती अब भूख मिटाने आती है !

छिपते जाते हैं सूरज चाँद-सितारे सब
मुरदा मिट्टी अम्बर पर चढ़ती जाती है
हो सावधान ! सँभलो ओ ताज-तख्तवालो !
भूखी धरती अब भूख मिटाने आती है।

कंकालों की जुड़ रही भीड़ चौराहे पर,
फिर से बननेवाला है कोई बन्दीखाना(?)
बिक रहे प्राण बिक रहे शीश बिक रही मौत
फिर से जगने को हैं सोये मरघट मसान
हर ओर मची है होली खून-पसीने की
हर ओर अँगारों की खेती लहराती है।
हो सावधान ! सँभलो ओ ताज-तख्तवालो !
भूखी धरती अब भूख मिटाने आती है ॥

है काँप रहीं मन्दिर-मस्जिद की मीनारें
गीता-कुरान के अर्थ बदलते जाते हैं
ढहते जाते हैं युग द्वार मकबरे-महल
तख्तों पर इस्पाती बादल मँडराते हैं
अँगड़ाई लेकर जाग रहा इन्सान नया
जिन्दगी कब्र पर बैठी बीन बजाती है।
हो सावधान ! सँभलो ओ ताज-तख्तवालो !
भूखी धरती अब भूख मिटाने आती है॥

मासूम लहू की गंगा में आ रही बाढ़
नादिरशाही सिंहासन डूबा जाता है
गल रही बर्फ सी डालर की काली कोठी
एटम को भूखा पेट पचाये जाता है
निकला है नभ पर नये सवेरे का सूरज
हर किरन नई दुलहिन सी सेज सजाती है।
हो सावधान ! सँभलो ओ ताज-तख्तवालो !
भूखी धरती अब भूख मिटाने आती है॥

चढ़ रही समय की भौंहों में सलवटें-शिकन
विंध्याचल करवट शीघ्र बदलनेवाला है
उठनेवाली है आग समुन्दर के दिल से
हिमवान किसी का खून उगलनेवाला है,
हर एक हवा का रुख कुछ बदला-बदला है
हर एक ज़र्रे में गरमी सी दिखलाती है।
हो सावधान ! सँभलो ओ ताज-तख्तवालो !
भूखी धरती अब भूख मिटाने आती है॥

सामने थी लाश उपवन की पड़ी
बेकफ़न अर्थी भ्रमर की थी खड़ी,
थी धरी चट्टान अपनी पीठ पर,
गूँथती थी आँख आँसू की लड़ी
फूँकने को प्राण लेकिन धूल में—
कंटकों में फूल मुस्काता रहा।

चाँद को खोकर हँसा है कब गगन
सूर्य से बिछुड़ी कहाँ किसकी किरन!
छोड़ आकर्षण कभी एकाकिनी
है न बस सकती धरा भी एक क्षण
पर अकेला सब तरह बिछुड़ा हुआ—
कंटकों में फूल मुस्काता रहा।

हो धरा मुखरित, दिशा हर गा उठे
सृष्टि में मधुमास फिर लहरा उठे
हँस उठें सूनी सजल आँखें सभी
मर्त्य मिट्टी से अमृत बरसा उठे
इसलिए पाकर घृणा भी विश्व से—
विश्व पर मैं प्यार बरसाता रहा।

सृष्टि हो जाये सुरभिमय इसलिए
कंटकों में फूल मुस्काता रहा।



२९

'३० जनवरी—एक आदेश'

है तीस जनवरी आज न स्याही मांग कलम
कुछ लिखना है तो आंसू कागज पर उतार
गाने का है गर चाव तोड़ दे यह वीणा
बन्दूक उठा, गोली मिजाज कर भर मल्हार।

ओ चित्रकार ! तस्वीर देवता की न खींच
जो मनुज मर गया है उसको दे रूप-रंग
यमुना तट पर सो रहा मसीहा जो अपना
उसको जीवित कर भर उसमें यौवन उमंग।

ओ शिल्पी ! मूर्ति न गढ़ बुतों को देख उधर
गोली खाकर ले रहा प्रेम आखिरी श्वास
लोह के कपड़े पहने शान्ति बिलखती है
ढोते-ढोते बारूद थक गया है विकास ।

इतिहासकार ! यह पृष्ठ अँधेरे का न जोड़
आगामी सदियाँ काली हो जायेंगी
ओ कवि ! इस नफरत को मत दे अपनी जुबान
सांसें जो कुछ जो रहीं न वे जी पायेंगी।

वैज्ञानिक ! ऐटम बम्ब फेंक मत और यहाँ—
है नागासाकी अब तक मुरदों का बज़ार
टैंकों के नीचे अब तक पड़ी तड़पती है
यह देश, कोरिया बीच एशिया की बहार।

मत घण्ट बजा ओ मठ मस्जिद आज़ान न दे !
कर रहा शहीदों का शहीद मरणाभिषेक
आहिस्ता बोल अरे ओ मज़हब की किताब !
हो गया आज खामोश विश्व भर का विवेक।

सब उठो चलो उस राजघाट पर आज जहाँ
बुन रही कफ़न कल्पना, चिता रच रहे छन्द
हैं मूक जहाँ सौ सौ कवियों के महाकाव्य
आनन्द स्वयं ही जहाँ हो रहा निरानन्द।

पर ठहरो अपने रक्त-सने इन हाथों से
उसकी समाधि मत छूओ न दो पूजापाती
सिंहासन छोड़ो अगर वन्दना करनी है
पथ पर आओ मर रहे जहाँ लाखों गांधी।



१०

तन तो आज स्वतन्त्र हमारा, लेकिन मन आज़ाद नहीं है!

सचमुच आज काट दीं हमने
जंजीरें स्वदेश के तन की,
बदल दिया इतिहास, बदल दी
चाल समय की चाल पवन की

देख रहा है राम राज्य का
स्वप्न आज साकेत हमारा,
खूनी कफ़न ओढ़ लेती है
लाश मगर दशरथ के प्रण को,

मानव तो हो गया आज—
आज़ाद दासता बन्धन से पर,
मजहब के पोथों से ईश्वर का जीवन आज़ाद नहीं है।
तन तो आज स्वतन्त्र हमारा, लेकिन मन आज़ाद नहीं है॥

हम शोणित से सींच देश के
पतझर में बहार ले आये
खाद बना अपने तन की—
हमने नवयुग के फूल खिलाये

डाल डाल में हमने ही तो
अपनी बाहों का बल डाला,
पात पात पर हमने ही तो
श्रम-जल के मोती बिखराये

क़ैद, क़फ़स सय्याद सभी से
बुलबुल आज स्वतन्त्र हमारी
ऋतुओं के बन्धन से लेकिन अभी चमन आज़ाद नहीं है।
तन तो आज स्वतन्त्र हमारा लेकिन मन आज़ाद नहीं है॥

यद्यपि कर निर्माण रहे हम
एक नई नगरी तारों में,
सीमित किन्तु हमारी पूजा
मन्दिर मस्जिद गुरुद्वारों में,

यद्यपि कहते आज कि हम सब—
एक हमारा एक देश है
गूँज रहा है किन्तु घृणा का
तार बीन की झनकारों में,

गंगा जमजम के पानी में
घुली मिली जिन्दगी हमारी
मासूमों के गरम लहू से पर दामन आज़ाद नहीं है।
तन तो आज स्वतन्त्र हमारा लेकिन मन आज़ाद नहीं है॥

एक कारवाँ के झण्डे के
नीचे आज हमारी गति है
एक ओर पग एक ओर मुख
ओर एक ही ओर प्रगति है,

फिर भी जाने क्यों हममें से
कुछ आगे हैं कुछ पीछे हैं
कुछ पथ पर ही खड़े और कुछ
वहाँ जहाँ यात्रा की इति है

आज हमारा पथ स्वतंत्र—
मंजिल स्वतंत्र, पग भी स्वतंत्र पर,
भेद-भाव से संचालक का संचालन आज़ाद नहीं है ।
तन तो आज स्वतंत्र हमारा, लेकिन मन आज़ाद नहीं है ॥

आज पा लिया हमने फिर से
अपनी दिल्ली का सिंहासन
कोहनूर से आज हमारे राष्ट्र—
मुकुट का ज्योतित कण-कण

लाल किले पर लहराता है
ध्वज - निशान तिरंगा प्यारा,
और कर रहा विश्व हमारे
दिव्य हिमालय का अभिनन्दन

अभी जा रहे तूफानी गति—
से हम पाँव धरे रवि शशि पर,
काबा, काशी की मिट्टी से किन्तु चरण आज़ाद नहीं है ।
तन तो आज स्वतन्त्र हमारा, लेकिन मन आज़ाद नहीं है ॥

३१

क्या है यह तूफान अरे मैं
खुद आँधी बनकर चलता हूँ !

मेरी छाती से टकराकर
टूट चुकी लाखों चट्टानें,
मेरी आँखें छूकर आते
कितने सावन मेघ सुहाने

सौ-सौ ज्वालामुखी कण्ठ में
मेरी प्यास दबाये बैठी
कोटि कोटि रेगिस्तानों को
मेरी साँसें गयीं सुलाने

आज अगर पथ अजर है
मग बीहड़ है तो क्या चिन्ता है?
काँटा चुभता जहाँ वहीं मैं—
वहीं फूल बनकर खिलता हूँ !

क्या है यह तूफान अरे मैं
खुद आँधी बनकर चलता हूँ !!

चाँद बहुत रोया था जब
मैंने मुस्काना छोड़ दिया था
कोयल कूक न पाई थी जब
मैंने गाना छोड़ दिया था

पूनम रात न मांग सकी थी
दिवस न धूप पहन पाया था
जिस दिन मैंने रूठ धरा पर
आना-जाना छोड़ दिया था

मुझ मिटाने मुझ बुझाने का—
प्रयत्न है व्यर्थ तुम्हारा
युग-युग से तम की छाती पर
मैं सूरज बनकर जलता हूँ!

क्या है यह तूफ़ान अरे मैं
खुद आँधी बनकर चलता हूँ!!

सौ सौ बार चिताओं ने
मरघट पर मेरी सेज बिछाई
सौ सौ बार धूल ने मेरे
गीतों की आवाज़ चुराई,

लाखों बार कफ़न ने रोकर
मेरा तन-शृंगार किया पर—
एक बार भी अब तक मेरी
जग में मौत नहीं हो पाई

मैं जीवन हूँ, मैं यौवन हूँ
जन्म - मरण है मेरी क्रीडा,
उधर विरह सा बिछुड़ रहा हूँ
इधर मिलन सा आ मिलता हूँ।

क्या है यह तूफान अरे मैं
खुद आँधी बनकर चलता हूँ !!



३२

परस तुम्हारा प्राण बन गया दरस तुम्हारा श्वास :

युग युग से निर्जीव शिला सी लेटी थी मिट्टी की काया
पथराई थीं चपल पुतलियाँ, ओठों पर हिम था चढ़ आया
लेकिन उस दिन चकमक सम छू गया हृदय जब प्यार तुम्हारा
विरह बिलख कर मधु बन गया मिलन विहँस कर हास बन गया
परस तुम्हारा प्राण बन गया दरस तुम्हारा श्वास बन गया ॥

एक वायु के झोंके सा था भटक रहा जग-जीवन सारा
कहीं न कोई मोड़, कहीं विश्राम न कोई संग-सहारा
पर जिस दिन अतृप्त संसृति की सूनी प्यासी युग बाहों में—
बिखर गए तुम धरा बन गई सिमिट गए आकाश बन गया ।
परस तुम्हारा प्राण बन गया दरस तुम्हारा श्वास बन गया ॥

तुम सोये सो गई निशा तुम जागे जगा सलज्ज-सवेरा,
सूरज भाल-सिंदूर बन गया, अंजन बन हो गया अँधेरा
अधरों पर जो काम धूप था गिरा वही जीवन उपवन में
झरझर कर पतझार बन गया खिलखिल कर मधुमास बन गया ।
परस तुम्हारा प्राण बन गया दरस तुम्हार श्वास बन गया ।

मुरदा था साहित्य, कलाओं पर थी मौन उदासी छाई,
जब तक ओ मेरे करुणाकर! तुमको मेरी याद न आई,
आधी रात मगर जिस दिन तुम मेरे लिए सिसककर रोए
सब कवियों के काव्य रच गए, सब जग का इतिहास बन गया।
परस तुम्हारा प्राण बन गया दरस तुम्हारा श्वास बन गया॥

तुमने क्या कर दिया कि जागे जगा मृतिका का यह ढेला?
सजा दिया क्यों इस नदिया पर इतनी नौकाओं का मेला
तुम क्या हो कैसे हो—है कुछ ज्ञात नहीं, बस यही पता है—
जन्म दे गया मोह तुम्हारा और मरण सन्यास बन गया।
परस तुम्हारा प्राण बन गया, दरस तुम्हारा श्वास बन गया॥



३३

निराकार ! जब तुम्हें दिया आकार स्वयं साकार हो गया।

युग युग से मैं बना रहा था मूर्ति तुम्हारी अलग-अकेली
आज हुई पूरी तो मैंने उसमें खड़ी अपनी ही देखी
लेकिन इससे भी बढ़कर अपराध कर गई पूजन-वेला
तुम्हें सजाने चला फूल था मेरा भी शृंगार हो गया।
निराकार ! जब तुम्हें दिया आकार स्वयं साकार हो गया॥

निशि दिन के आने-जाने पर बुना सांस ने चीर तुम्हारा
पहनाने जब चला तुम्हें तो वह बन गया शरीर हमारा
और एक दिन जब आई बरसात हो गया मन चंचल
मैंने तुम्हें पुकारा रोकर पर गुंजरित संसार हो गया।
निराकार ! जब तुम्हें दिया आकार स्वयं साकार हो गया॥

गंध तुम्हारी थी मैं तो बस बन कर सुमन युग लाया था
रूप तुम्हारा था मैंने तो केवल दर्पण दिखलाया था
पर यह दुनिया भी क्या है कैसा अनर्थ हो रहा यहाँ पर
यश तुम्हारा तुम्हें न मिलकर मेरा यश विस्तार हो गया।
निराकार ! जब तुम्हें दिया आकार स्वयं साकार हो गया

जो भी नाम दिया तुमको वह मेरा भी परिचय बन बैठा,
जिस पल तुम्हें बिठाया मेरा ही वह प्राण हृदय बन बैठा,
अर्घ्य चढ़ा जो भी तुम पर बन गया मधु मेरी साँसों का
जो भी तुम्हें देखने दौड़ा मुझे देख बलिहार हो गया ।
निराकार ! जब तुम्हें दिया आकार, स्वयं साकार हो गया ॥

सुधि की ले पतवार सजाकर फिर अर्पण साँसों की नैया,
पाल आँधियों को फैला कर, तूफ़ानों को बना खिवैया,
तुम्हें खोजता फिरता था मैं एक लहर ऐसी आई
डूब गई तृण-तरी, किन्तु मैं सारा सागर पार हो गया ।
निराकार ! जब तुम्हें दिया आकार स्वयं साकार हो गया ॥



३४

मनुष्य की एवरेस्ट विजय पर

आखिर मुट्ठी भर धूल पहुँच ही गई वहाँ
जा सके न पाँव जहाँ इतिहास पुराणों के
आखिर धरती के बेटे ने गूँथ ही दिए
बरफ़ीले बाल पहाड़ों के, चट्टानों के।

सिन्दूर चूम ही लिया धरा के माथे का
आखिर श्रम के फ़ौलादी खून-पसीने ने
हिम की शहजादी को मुंदरी पहना ही दी
आखिर शुद्ध पानीवाले एक नगीन ने।

कोमल गुलाब से नाजुक ओठों के आगे
गाने ही पड़ मौन-मुरदा सुनसानों को,
अन्त में मुश्किलों को देनी ही पड़ी राह
जिद्दी मानव के आवारा अरमानों को।

मंजिल को लाखों बार थपेड़े का मज़ाक
पहिनाया था आकर आँधी तूफ़ानों ने
बर्फ़ ने उड़ाया कफ़न रास्ते को छिन-छिन,
सूरज को निगल लिया क़ातिल तमगानों ने।

काँटों - कंकड़ों झाड़ - झंखाड़ों ने रोका
रोका बूँदों ने सावन में बरसातों ने,
रोका प्यासे नयनों की करुणा पुकार ने
रोका सूने प्राणों ने भीगी रातों ने ।

पत्नी के मस्तक के सुहाग ने मान किया
टेरा झुर्रियों भरी जननी की छाती ने
बच्चों की किलकारी ने डाली गले बाँह
दी शपथ पिता की दुःखी जीवन बाती ने ।

छाती पछाड़ ममता चीखती रही पीछे,
स्नेह ने सिसकियाँ भर अंचल झकझोरा
वात्सल्य मचलता रहा एक पुचकारी को
प्रेम ने बिलख कर बाँध समुन्दर का तोड़ा ।

लेकिन जाने वाला कैसे रुक सकता था,
उसको चलने का अपना कौल निभाना था
जीकर मरकर कैसे भी हो उसको तो बस
अपनी मिट्टी को मंजिल तक पहुँचाना था ।

जब बैठ गई थी मौत सामने मुँह खोले
तब सहसा एक हवा ऐसी भी आई थी
जो दूर देश से किसी नयन के सावन की
आँसूवाली बौछार उड़ा ले आयी थी ।

तब घूम गई थी नयनों के आगे क्षण भर
पत्नी की झलमलती सुहागवाली बेंदी
कानों में भी तब रोया था राखी का स्वर
रँग गई धरा को भी सावन वाली मेंहदी ।

क्षण भर के लिए पाँव तव पथ पर ठिठका था,
मन भी था किसी नयन के जल में डूबा था
तन ने भी चलने से इन्कार कर दिया था
नयनों का हर सपना छूने से डरा था।

लेकिन था साहस एक भरे साथी जिसने
छोड़ा न साथ उन साथ छोड़नेवालों में
बढ़ता ही गया आखिरी दम तक मंजिल पर
बन मरहम लगता रहा राह के छालों में।

यों भर ही दिया पल में लक्ष्य-भेद पूरा
तन को कर तीर, कमान बना व्याकुल मन को
अवरोधों की प्रत्यंचा खींच प्रगति-गति से
ले गया शिखर के शिरपर आखिर रज-कण को।

मानव के साहस धन्य कि तूने दिखा दिया—
तू चुम्बन से सूरज को शरमा सकता है
तू पायल पहना सकता है तूफ़ानों को
पाषाणों को साँसों से भरमा सकता है।

तूने यह बतला दिया कि पौरुष के आगे
मुश्किल को अपनी ही मुश्किल पड़ जाती है,
हिम्मत गर हारे नहीं मुसाफ़िर अपनी तो
खुद मंजिल उसको बढ़कर गले लगाती है।

तूने निश्चित कर दिया कि बहुत शीघ्र भू पर
देवों का सुन्दर स्वर्ग उतारा जायेगा,
तू ने घोषित कर दिया यह दिन दूर नहीं
जब विजय मृत्यु पर भी मानव पा जायेगा।

पर ठहर गर्व का मुकुट न पहना गौरव को
बस यहीं-यहीं तेरे गिर जाने का भय है
कर सका न प्राप्त विजय खुद पर ही तो तेरी
यह प्रकृति-विजय रे सबसे बड़ी पराजय है ।





फूल की सारी कहानी धूल से
साँझ जा कहती रही यह सब सुबह सुनती रही।

हाट मिट्टी ने लगाकर साँस की
रात दिन बेचा-खरीदा प्राण को
उम्र भर की यह मगर सौदागरी
बस कफ़न ही दे सकी इन्सान को
देह का हक़दार मरघट बन गया
छीन कर उच्छ्वास ले भागा पवन
प्राण सारी मोल ले ली धूप ने
बन अभावों का गया गाहक गगन
मधु पे जिसका न दाम चुका कहीं
हर निशा भरती रही औ हर ऊषा गुनती रही।

फूल की सारी कहानी धूल से
साँझ जा कहती रही यह सब सुबह सुनती रही॥

एक दिन बैठा समुन्दर तीर पर
सुन रहा था बुलबुले की मैं कथा,
एक कागज की तिरी कश्ती तभी
थी लदी जिसमें पहाड़ों की व्यथा
बोझ इतना भर मुझे अचरज हुआ
चल रही है किस तरह यह धार में
हँस कहा उसने 'चलाती चाह है,
आदमी चलता नहीं संसार में।'
बस तभी से उम्र की यह बाँसुरी
जन्म बन बजती रही बनकर मरण धुनती रही।

फूल की सारी कहानी धूल से
साँझ जो कहती रही वह सब सुबह सुनती रही॥

पथ पर इस रोज जब ठोकर लगी
पाँव पथ को गालियाँ देने लगा,
ठीकरा दोषी जिसे समझा गया
इस तरह कह सिसकियाँ लेने लगा —
'चोट तुझ से कम न आई है मुझे
मैं नहीं तू है सबब इस भूल का
खोलकर तो आँख चुप चलता नहीं
नाम है बदनाम करता धूल का'
मैं तभी से देखता हूँ आज तक
ठोकरें खाता रहा पग राह सर धुनती रही!

फूल की सारी कहानी धूल से
साँझ जो कहती रही वह सब सुबह सुनती रही॥

एक तिनके ने किसी तूफ़ान के
साथ उड़कर जब लिया आकाश छू
एक उजड़ी शाख से उसने कहा
'देख मैं किस ठौर हूँ किस ठौर तू'
शर्म से डाली झुकी पर क्रुद्ध हो
वायु बोली 'व्यर्थ यह अभिमान है
वक्त का ही है करिश्मा यह अरे!
जो यहाँ वह तू वहाँ मेहमान है।
पर उसी दिन से सदा मैंने सुना
नीड़ तृण जब जब बना बिजली कफ़न बुनती रही।

फूल की सारी कहानी धूल से
साँझ जो कहती रही वह सब सुबह सुनती रही।।

पेड़ बैठा एक दिन मैं फूल को
व्यर्थ ही तू कण्टकों में हँस पड़ा
विश्व को खुशबू लुटाकर भी मगर
अन्त में तू पत्थरों पर जा चढ़ा
वह हँसा बोला कि खुद को भय-हीन
दान करना ही अरे अमरत्व है
देवता के शीश चढ़ जिसका लिया
श्रेष्ठतर देवत्व से मनुजत्व है
बस इसी से गत दिन कवि की कसम
था घृणा भी विश्व में धुन प्रेम का गुनती रही।

फूल की सारी कहानी धूल से
साँझ जो कहती रही वह सब सुबह सुनती रही।।

नसेनी

३६

[नसेनी निसैनी निश्रेणी अधिरोहिणी=ऊपर चढ़ने का साधन यानी सीढ़ी। नसेनी जीवन का एक रूपक है। दो बाँस – हृदय और बुद्धि अथवा शरीर और आत्मा हैं। तीन डंडे (सीढ़ियाँ) जीवन के तीन पन क्रमशः बचपन यौवन और बुढ़ापा है। आँगन जहाँ से हम इस आयुरूपी नसेनी पर चढ़ना आरम्भ करते हैं जन्म का प्रतीक है और छत जहाँ पहुँचकर हमारी यह चढ़ाई खतम हो जाती है और जहाँ जाकर अन्त में हम सो जाते हैं मृत्यु का प्रतीक है। कविता में आया हुआ 'घुन' दुःख का प्रतीक है! घुन बाँस लकड़ी आदि को लग जाता है तो वे नष्ट हो जाते हैं। इन संकेतों को ध्यान में रखकर पाठक 'नसेनी' कविता को पढ़ेंगे।]

दो बाँस तीन डंडों से बनी नसेनी यह
जो जड़ी सहन का जोड़ रही छत से नाता
धरती-आकाश बने जब से तब से इसपर
हर एक यहाँ चढ़-उतर, उतर-चढ़ता जाता!

आँधियाँ घिरीं तूफ़ान चले, टूटे पहाड़
बदला जग बदली सदियाँ बदले सिंहासन
पर अब तक बदल नहीं पाया है क्षण भर को
इस नई-पुरानी सीढ़ी का संसृति-शासन!

कोई आँगन में कोई पहली सीढ़ी पर
कोई हो खड़ा दूसरी पर पछताता है
पग धरने को है कोई विकल तीसरी पर
कोई छत पर जाकर निज सेज बिछाता है

अचरज होता है कैसे बस दो बाँसों पर
है सधी सृष्टि इतनी विशाल इतनी भारी !
कैसे केवल घुन लगे तीन इन डंडों पर
चढ़ उतर रही है युग-युग से दुनिया सारी !

है यह भी एक प्रश्न मैं पूछ रहा गुरु से
क्या सबका छत पर जाना यहाँ ज़रूरी है ?
आना है क्या अनिवार्य सभी का आँगन में ?
क्या एक मसनी सिर्फ़ ज़िन्दगी पूरी है ?

उत्तर देता आकाश कि चढ़ना ही जीवन
औ मृत्यु उतरने का ही एक बहाना है
है जन्म-मरण बस तीन सीढ़ियों की दूरी
सबको ऊपर जाना है नीचे आना है।



३७

मैं सोच रहा हूँ अगर तीसरा युद्ध छिड़ा
इस नई सुबह की नई फ़सल का क्या होगा
मैं सोच रहा हूँ गर ज़मीन पर उगा ख़ून
मासूम हसों की चहल-पहल का क्या होगा ?

यह हँसते हुए गुलाब महकते हुए चमन
जादू बिखराती हुई रूप की यह कलियाँ
यह मस्त झूमती हुई बालियाँ धानों की
यह शोख सजल शरमाती गेहूँ की बलियाँ।

गदराते हुए अनारों की यह मन्द हँसी
यह पेंग बढ़ा-बढ़ा अमियों का इठलाना
यह नदियों का लहरों के साथ झूम चलना
यह पानी के सितार पर झरनों का गाना।

मैनाओं की नटखटी ढिठाई तोतों की
यह शोर मोर का, भौंर भृंग की यह गुनगुन
बिजली की कड़क तड़क, बदली की चटक मटक
यह जोत जुगुनुओं की यह झींगुर की झुनझुन।

किलकारी भरते हुए दूध से यह बच्चे
निर्भीक उछलती हुई जवानों की टोली
रति का शरमाती हुई चाँद सी यह दुल्हनें
सगोल घुराती हुई पायलों की बोली।

कान्हा की यह ललकार, थाप यह ढोलक की
सूरा मीरा की सीख कबीरा की बानी
पनघट पर चपल गगरियों की यह छेड़छाड़
राधा की कान्हा से छुप-छुप आनाकानी।

क्या इन सब पर खामोशी मौन बिछा देगी
क्या धुप धुआँ बनकर सब जग पर छायेगा ?
क्या कूकेगी कोयलिया कभी न बगिया में
क्या पपिहा फिर न पिया को पास बुलायेगा ?

मैं सोच रहा युग जो इतिहास लिख रहा है
क्या रक्त घुलेगा उसकी काली स्याही में ?
क्या लाशों के पहाड़ पर सूरज उभरेगा?
क्या भोर सिसकियाँ लेगा उजड़ तबाही में ?

क्या विष चाट लेगी शबाब इन फूलों का,
क्या धूप अँधेर की दासी हो जायेगी
क्या अग्नि पहन मणी झकोरें मोती की ?
क्या शान्ति मरघटों में छिपकर सो जायेगी ?

क्या पी जायेगा रेगिस्तान नर्मदा का
क्या गंगा का सलाब भाप बन जायगा ?
झुक जायेगा क्या मौन हिमालय योगी का
विन्ध्याचल में पतझार दुबारा आयगा ?

मैं सोच रहा—जो फूल रहा खेतों में उस—
बचपन को गोद मिलेगी क्या संगीनों की ?
मिटकर मिट्टी के सर पर जो धर रहा ताज
उस श्रम को उम्र मिलेगी टैंक मशीनों की ?

जो अभी-अभी सिन्दूर दिये घर आई है
जिसके हाथों की मेंहदी अब तक गीली है,
घूँघट के बाहर आ न सकी है अभी लाज
हल्दी से जिसकी चूनर अब तक पीली है

क्या वह अपनी लाड़ली बहन साड़ी उतार
जाकर बेचेगी निज चूड़ियाँ बजारों में ?
जिसकी छाती से फूटा है मातृत्व अभी
वह माँ क्या दफनायेगी दूध मजारों में ?

क्या गोली की बौछार मिलेगी सावन को
क्या डालेगा विनाश झूला अमराई में ?
क्या उपवन की डालों में फूलेंगे अंगार
क्या घृणा बजेगी भौंरों की शहनाई में ?

असहाय बुढ़ापा तड़पेगा क्या मरघट में
बारूद करेगी क्या शृंगार जवानी का ?
क्या मानवता पर विजयी दानवता होगी
क्या होगा अन्त पुराना नई कहानी का ?

चाणक्य मार्क्स एंजिल्स लेनिन गांधी सुभाष
सदियाँ जिनकी आवाजों को दुहराती हैं
तुलसी वर्जिल होमर, गोर्की शाह मिल्टन
चट्टानें जिनके गीत अभी तक

मैं सोच रहा क्या उनकी कलम न जागेगी
जब झोंपड़ियों में आग लगाई जायेगी
करवटें न बदलेंगी क्या उनकी कब्रें जब—
उनकी बेटी भूखी पथ पर सो जायेगी ?

जब घायल सीना लिये एशिया तड़पेगा
तब वाल्मीक का धैर्य न कैसे डोलेगा ?
भूखी कुरान की आयत जब दम तोड़ेगी
तब क्या न खून फिरदौसी का कुछ बोलेगा ?

सुन्दरता की जब लाश सड़ेगी सड़कों पर
साहित्य पड़ा महलों मे कैसे सोयेगा ?
जब कैद तिजोरी में रोटी हो जायेगी
तब क्रान्ति बीज कैसे न पसीना बोयेगा ?

हँसिये की जंग छुड़ाने में रत हैं किसान
है नई ओप दे रहा मजूर कुदाली को
नभ बसा रहा है नये सितारों की बस्ती
भू लिये गोद मे नये खून की लाली को ।

बढ़ चुका बहुत आगे रथ अब निर्माणों का
बम्बों के दलदल मे अवरुद्ध नहीं होगा
है शान्ति राहीवों का पड़ाव हर मंजिल पर
अब युद्ध नहीं होगा अब युद्ध नहीं होगा ।



जीवन मस्त।

सूखा

रह चुकी बहुत बरसात क़ैद में मेघों की
उसको ज़मीन पर अब उतारना ही होगा
धरती से नभ के सूरज चाँद सितारों को
पानी का यह घूँघट उघारना ही होगा।

निर्जीव पड़े खलिहान खेत दम तोड़ रहे
हैं सिसक रहे वन बाग कराह रहे सारे
हो गये पीलिया से पीले सब पेड़ पात
चर गई लुओं की लपटें चरागाह प्यारे।

हल की हिचकी बंध रही हिचकता है हँसिया
विधवा खुरपी असहाय अनाथ कुदाली है
है साँस टूटती अब जवान हथौड़े की
बिछुए उतारती नये धान की बाली है।

सूखे से हैं बीमार कुएँ, बापी तड़ाग,
प्यासे बैठे पनघट पर गीत गगरियों के
गश खाकर लेटी हैं खामोश नहर-नदियाँ
हैं डर सभी तट पर कंकाल ठठरियों के।

फूलों की लाशों पर खाते भौंरे पछाड़,
मुरदा तितलियाँ कफ़न ओढ़ें कलियों का
चढ़ आया मलय-समीरन को काला बुखार
सब फूल तपेदिक चूस गई पथ-गलियों का ।

हैं फेन डालते बैल रंभाती हैं गायें
दोहाते फिर रहे बछड़े सब बौराये से
कुत्ते बिल्ली तोता मैना कोयल कौवे
आकाश देखते सब टकटकी लगाये से ।

आने दो शीघ्र धरा पर सावन की फुहार
अन्यथा समय की प्यास सिन्धु बन जायेगी
यदि जल न मिला तो सत्य मान लो आसमान !
यह मिट्टी शोणित के सैलाब बुलायेगी ।

नीची हो जाती हैं चोटियाँ पहाड़ों की
जब प्यास तड़प कर अपना शीश उठाती है
भोन को पीव विकल हो उठते हैं सागर
जब वह निज रेगिस्तानी अधर घुमाती है ।

उसकी मुट्ठी में बन्द पड़े आँधी अन्धड़
पग में करवट लेती हलचल भूचालों का,
साँसों में चिनगारियाँ हजारों अकुलातीं
ओठों पर क्रान्ति, करों में नाश मशालों की ।

अब भी सँभाल ले होश ! हवा का रुख जरा
जर्जर ग्राम के नीम जिन्दगी के जल की
अब भी है समय छोड़ सिंहासन अधर का
आज ही आज की मित्र न कर चिन्ता कल की ।

यह जीवन-जल है आसमान का नहीं मूक !
धरती ने दिया उधार भरा का यह धन है
तेरा नभ में ही इसे रोक रखने का प्रण
तेरे विनाश का सबसे पहला कारण है ।

ज्यादा दिन तक रह सकती नहीं धरा प्यासी
श्रम टूटेगा पानी के पहरेदारों का
चल नहीं सकेगी साजिश और सितारों की
रह नहीं सकेगा सूना चमन बहारों का ।

पर उसे किसी भी ऊँचाई पर करे कद
बहने को तो पर जल नीचे ही आयेगा
उतनी ही और तेज होगी उसकी फुहार
जितना ही ऊँचा उसे बसाया जायेगा ।

यह बादल भाप-धुयें के गुब्बारे हैं बस
इनके बल का अभिमान स्वयं को छलना है
धरती की एक फूँक से ही उड़ जायेंगे
बस जरा देर है किसी हवा का चलना है !

लो वह आई पुरवाई, छाई वह बहार
वह चमकी बिजली वह मोरों ने किया शोर
वे लगे झूमने खेत थिरकने लगे बाग
वह कली खी गई गली हो गई वह विभोर ।

वह गाने लगी ग्राम की डाल-डाल झूमा
वह लाल सजा हो गई कुमारी कोयलिया
वह बजी बैल की घण्टी वह छमकी पायल
वह मस्त बजाने लगा मुरलिया सांवलिया ।

बौछार पड़ी यह, भींग गई वह नई बहू
यह बादल गरजा वह सावन ने गही बाँह
ये जुगनू चमके ठिमक उठे वे श्वास-श्वास,
यह कजली बोली वह विरहा कर उठा 'आह'।

रे! बाँध सका है कौन समय के सावन को
वह एक साथ लाखों स्वर में लहराता है
जो उसे क़ैद करता है बादल के समान
मिट्टी पर गिर कर खुद मिट्टी हो जाता है।



३९

कैंची से काँटों की जो क्रान्ति कतर डाली
यह फूलों का विद्रोह कौन अब रोकेगा ?
आ रही सुरभि की आँधी जो हर उपवन में
पतझार कौन-सा है जो इसको टोकेगा ?

रे ! गन्ध नहीं बाँधी जा सकती ताक़त से
वह तूफ़ानों के बाल खोल लहराती है
गाती है जब वह बैठ चिता की लपटों में
मरघट की मिट्टी तक से क्रान्ति उगाती है !

कोमल हैं कलियाँ और पंखुरियाँ नाज़ुक हैं
घायल कर सकती खुशबू किन्तु पहाड़ों को
गुदगुदा जगा सकती मुर्दा चट्टानों को
तलवार थमा सकती आँसू की धारों को !

गरमा देती है सर्द बर्फ़ के सीने को
असमय जब कोई फूल कहीं मुरझाता है
हल की नोकों की धार तेज़ कर देती है,
जब खून ज़मीनों पर इतिहास लिखाता है !

जब कभी खोलती है वह अपने पलक-पत्र
मोहे की दुनिया सौरभ से भर जाती है
टीकों की छाती पर हँस उठते फूल-पात
बारूद भरों की आँखों में शरमाती है।

'चेरी' के ओठों पर सुर्ख़ी दौड़ती उभर
नर्गिस के गालों पर इस ओर ललाई है
उस दिशा खिल रहे हैं बिजली के लाल फूल
इस दिशा अँगारों पर बहार बौराई है।

चम्पा गुलाब जूही बेला केतकी कमल
सबके हाथों में परिमल पिचकारी है
माली हो जा हुशियार कि हरे तन-मन से
होली खेली जाने की सब तैयारी है।

यह रंगों का जो वस्त्र बुना है धरती ने
तेरी फ़ौलादी कैंची काट न पाएगी
भूले से भी पड़ गई अगर तुझ पर फुहार
यह इस्पाती तलवार काग़ज़ हो जाएगी।

मत इसे बन्द कर इन चाँदी के महलों में
माटी घर की ही दीवारें हो जाएँगी
मत हाथ बढ़ा इसके छूने को ओ पागल!
दुश्मन घर की ही तलवारें हो जाएँगी।

तू भूल न इस पर फ़क़त सीख बस यह इससे—
किस भाँति विश्व में मधुऋतु लाया जाता है
कैसे विनाश पर विजयी होता है विकास
किस तरह धूल में फूल खिलाया जाता है!

कैसे यह विष-वैषम्य मिटेगा दुनियाँ से
कैसे समता का स्वर्ण सवेरा आएगा ?
कैसे मिल की चिमनी का धुँआ साफ़ होगा
कैसे किसान निज हल को ताज पिन्हाएगा ?





४०

सभ्यता कहाँ आ गई ? कहाँ खड़ा है विश्व ?
जा रहा है किधर गति रथ विज्ञान-कलाओं का ?
किस दिशि उन्मुख इतिहास ? दे रहा क्या विभास ?
क्या छोर समय का है ? क्या छोर हवाओं का ?

क्या यही सभ्यता का वह सुन्दर सुखद स्वप्न ?
है पड़ा जहाँ पग-पग पर मुर्दों का पड़ाव
बिक रहा जहाँ नारीत्व रजत के टुकड़ों पर
फूलों के शव पर जहाँ शृगालों का जमाव !

क्या यही कला की चिर अनमोल अजन्ता है ?
मकड़ी-मकड़ों ने जहाँ तान रक्खे जाल
घोंसले बने हैं जहाँ उलूकों-गिद्धों के
अजगर बिच्छू साँपों का जहाँ धाम वास ।

यह जलते महल-मकान तड़पते गली-गाँव
यह भूख भुखमरी, सूखा बाढ़ अकाल-त्रास
यह ध्वस्त धरा यह भग्न धुएँ से घायल नभ
विज्ञान इसी को कहता क्या मानव विकास ?

सम्मुख लहराता है मौत का अतल सिन्धु
इतिहास यहीं तक बस क्या चलकर आया है ?
मानव मानव में बीज घृणा की बन्दूकें
क्या यही प्रगति अब तक मनुज कर पाया है ?

बाइबिल के स्वर्ण सफों पर गोली के अक्षर
क्या क्राइस्ट, शेक्सपियर शेली का यही देश ?
कर में ऐटम मस्तक में युद्धों के नक्शे
लिंकन वाशिंगटन इलियट का क्या यही वेश ?

क्या बाल्मीकि का यही तपोवन पावन है ?
सीता की साड़ी यहाँ उतार रहा सोना
क्या यही सूर का वृन्दावन मनभावन है ?
राधा से यहाँ जमाना करता अनहोना ।

गांधी का देश यही ? सुभाष की यही भूमि
है कैद जहाँ आजादी सेफ तिजोरी में ?
वेदों उपनिषदों गीता का क्या यही मर्म
हो आम आदमी बन्द नाज की बोरी में ?

मैं सोच रहा हूँ इस गति से चलकर जमीन
किस ओर आदमी की किस्मत ले जायेगी ?
ऐसे ही अगर विनाश चाटता रहा मनुज
दुनियाँ सारी कितने दिन खैर मनायेगी ?

करती है जब विद्रोह प्रकृति होकर अधीर
आदमी स्वयं तब अपनी मौत बुलाता है
जब मद अकमाता है निज पौरुष निर्मम पर
तब उसका ही निर्माण उसे खा जाता है ।

अब भी है समय नहीं कुछ ज्यादा देर हुई
लोहे के ये बोझीले वस्त्र उतारो तुम
आँखों से यह सोने का सुरमा दूर करो
ले प्यार आँख में भू की ओर निहारो तुम।

सारे कंठों से एक साथ मिलकर गाओ
वह गीत कि जो सबके गीतों को गाता है
जिसकी लय तान अमर है, कभी न टूटी है,
वह गीत—जिसे जग कहता धरती माता है।



४१

मत इसे समझो खिलौना प्राण प्रेयसि !
यह हृदय है यह हृदय है यह हृदय है
यह किसी कवि का दुखी कवि का हृदय है !

यह किसी की कब्र का बुझता दिया है
मृत्यु ने शृंगार खुद जिसका किया है,
स्नेह इसका जल चुका कब का न, जाने
रक्त निज पीकर अभी तक यह जिया है
आँधियाँ इसके बुझाने को झुकी हैं,
झूमने को भी खड़ा अंधड़ अभय है ।
यह किसी कवि का दुखी कवि का हृदय है ।।

अंक में इसकी अमर मुस्का रही है,
आँख में कारी बदरिया छा रही है
भग्न अधरों में मरुस्थल की पिपासा,
क्षुब्ध बुलबुल कण्ठ में अकुला रही है
गीत में इसके किसी की याद रोती
और आहों में अभी सोती प्रलय है ।
यह किसी कवि का, दुखी कवि का हृदय है ।।

दबता खुद, पर किसी का यह पुजारी
जीत कर यह हारने वाला खिलाड़ी
दान करने के लिए सर्वस्व अपना—
माँगता जो भीख यह ऐसा भिखारी
यह स्वयं मंज़िल किसी की पर मुसाफ़िर
खुद पराजित पर किसी की यह विजय है ।
यह किसी कवि का दुखी कवि का हृदय है ॥

साँझ इसके पथ पर दीपक जलाती
रात इसकी सेज पर सपने सजाती
है चढ़ाती फूल इस पर मुग्ध ऊषा
भोर गाकर गीत कोयलिया जगाती
सृष्टि का सम्राट् यह फिर भी किसी के—
बस चरण पर लोटता इसका प्रणय है
यह किसी कवि का दुखी कवि का हृदय है ॥

फूल पर मुस्कान इसकी नाचती है
बादलों से लोर इसकी झाँकती है
कह रहे तारे इसी की ही कहानी
पीर पपिहे में इसी की काँपती है
प्यार के दो बोल सुनने के लिए पर
यह किसी के सामने चिर मौनमय है ।
यह किसी कवि का दुखी कवि का हृदय है ॥

छू रहा है हाथ इसका हो गगन को
श्वास इसका ही सहज थामे पवन को,
बन्द आँसू में इसी के सिन्धु सो सो
खोजती है मुक्ति इसके ही चरण को
चूमने का किन्तु फिर भी पथ किसी का—
यह सदा आराधना में लीन-मय है ।
यह किसी कवि का, दुखी कवि का हृदय है ॥

टूटता यदि यह कभी जाने अजाने,
टूट जाते सृष्टि के सपने सुहाने,
विश्व में पतझार वह आता भयानक,
मौन हो जाते सकल गाने-तराने
बाढ़ वह आती धरा पर आँसुओं की
डूब जिसमें विश्व क्या जाता समय है।
यह किसी कवि का दुखी कवि का हृदय है॥

क्योंकि यह अनमोल वह हीरा सुहागिन!
जो जिसे सम्राट् भी निर्धन अकिंचन
और पाकर भिक्षु भी जिसको निमिष में,
है बसा सकता धरा पर स्वर्ग-नन्दन
चाहतीं तो खूब तुम खेलो इसी से—
तोड़ मत देना यही बस एक भय है।
यह किसी कवि का, दुखी कवि का हृदय है॥



४२

सत्य का निर्माण करती स्वप्न की अन्तिम धारण हो।

दीप अम्बर के बुझाकर विश्व में नित प्रात आता
छीन कर जीवन धरा का धन गगन में मुस्कराता
कर हजारों घर तिमिरमय एक जलता दीप सुख का
एक ढलता अश्रु तब जब श्वास में बस प्राण आता
सृष्टि का संहार करता सृष्टि का नूतन सृजन हो।
सत्य का निर्माण करती स्वप्न की अन्तिम धारण हो॥

कामिनी के मधु से धुलती कुसुम-कलि की मुधरता
अश्रु बनकर हो सदा झरती नयन से प्रीति कविता
एक गिरता अश्रु जब बनकर समर्पण पूर्णता का—
मौन हाहाकार कर पाषाण पूजा का पिघलता
निर्बलों का बल सदा है एक दुर्बल अश्रु कण हो।
सत्य का निर्माण करती स्वप्न की अन्तिम धारण हो॥

घोर तम की ही निशा से ज्योति पहली फूटती है
दग्ध उर की आग से ही धार जल की छूटती है
चिर-निराशा से सदा होती उदय आशा सुनहली
वासना में साधना की नींद सहसा टूटती है
मुक्ति पथ निर्देश करता विश्व बन्धन का चरण हो।
सत्य का निर्माण करती स्वप्न की अन्तिम धारण हो॥



प्राण की धड़कन बनी जो प्राण की मरु-प्यास ही है।

प्यास ही वह है कि जिससे विश्व के मधु की मधुरता
प्यास हो—जिससे निखरती प्राण-प्याले की सुघरता
दग्ध उर की प्यास ही वह जो उपेक्षित हो जगत से
है गरल को भी सदा ललकारती बनकर अमरता,
मृत्यु को ललकारती जो मूक दुख की साँस ही है।
प्राण की धड़कन बनी जो प्राण की मरु प्यास ही है।।

प्यार ही वह छाँह में जिसकी हृदय का ताप पलता
वह शलभ जिसके प्रणय-बलिदान से युग-दीप जलता
चिर-विकल कवि के सजल दो आँसुओं का हास ही वह
विश्व के दुख का विकल ज्वालामुखी जिसमें मचलता
पर मचलती मुक्ति जिसको वह प्रणय भुज-पाश ही है।
प्राण की धड़कन बनी जो प्राण की मरु-प्यास ही है।।

एक सुख की साँस ही वह जो अमरता को लजाती
मधु की ही बूँद है वह जो न मरु में सूख पाती
एक अन्तिम श्वास ही वह जो प्रतिध्वनि बन चिता की
दे चुनौती नाश को आराध्य की छाती हिलाती,
सत्य को जो दे चुनौती स्वप्न का विश्वास ही है।
प्राण की धड़कन बनी जो प्राण की मरु-प्यास ही है।।

श्री अरविन्द की सात कविताओं के अनुवाद

दिव्य सुमन (Rose of God) का रूपान्तर

४४

नभ-नीलम पर कुंकुम की शुभ रेखा सम अंकित दिव्य सुमन !
आनन्दोत्पल ! आग्नेय मधुर ! चेतन-सत्-सप्त-सदन रंजन !
वर्णनातीत के प्रेम-पुष्प हे चिर रहस्यमय मृदु कलित !
मानव-मानस में मगन उठा हे चमत्कार हे ज्योति-नित !
अस्तित्व शिखर पर परम ज्ञान-विभासोदय के गन्ध-श्वास !
हे ज्योति कुसुम चिर दिव्य-दृष्टि-अन्तस्थ मर्म, शाश्वत प्रकाश !
आहुत मंगल घना के शुभ हे महाकाशोपम सूर्य !
भूतल के मानस में उतरो हे हिरण्यगर्भ मधुगन्ध तूर्य !
हे चिर अनन्त के मधुर-ओज-बल-भूमिमन्त आनन्द कुसुम !
हे शान्ति-सुमन हीरक आभा से भेद निशा-तम घन दुर्दम !
हो दीप्त मनुज संकल्पों में आयोजन पूर्ण करो अभिनव !
प्रतिमा अमरत्व की अमरित की हे अतम के चिर ज्ञानानुभव !
हे स्निग्धोत्पल, शुभ दिव्य-काम भावना अमरित स्वर्ण-श्याम !
जीवन प्रसून ! आनन्द सज्जित शोभायुत ध्वनि-स्वर-वर्ण-धाम !
अनुपम मधुमय इन्द्रानुभूति में बदला यह मानव-मर्त्य-देह !
भू-स्वर्ग बन हो काम विजित-मनु-सन्तति मृत्युञ्जय अजय !
आनन्द कुसुम ! शाश्वत छवि पर आन दाखित सदृश शोभित !
हे प्रेम-पुष्प, अमित प्रदीप्त, श्री-दीप्त चेतनान्तर-मणि-द्युति !
मानस-ईप्सा से जाग उगे हे विमल रही जो अज्ञातान्त !
सौन्दर्यानन्द विपुष्पित जग-जीवन हो शाश्वत ज्योति प्राप्त !

वृक्ष और आत्मा (Tree) कविता का अनुवाद

४५

स्वर्गाभिरत सैकत-तट पर तरु खड़ा एक
नभ ओर भुजाओं सी शाखायें फैलाता।
हो विफल किन्तु जड़ धरती के आकर्षण से
ऊपर न मृत्तिका की माया से उठ पाता।
यह है आत्मा, मानव स्वरूप जिसकी शाश्वत स्वर्गिक उड़ान
है नीचे रोके हुए सदा रजपाश-बद्ध मम देह मात्र।

जीवन और मरण (Life and Death) का अनुवाद

९६

जीवन-मरण मरण-जीवन दो दारुण युगों से
भरमा रहे बुद्धि जग की दीखते विरोधी
कर उन्मुक्त प्रतिबिम्ब सत्य फिर मानस-सम्मुख
खुले युगों के छिपे हुए सब पृष्ठ प्रबोधी।
जीवन है संक्षिप्त मृत्यु यदि, स्वप्न न शेष है,
जन्म-मरण का मरण-जन्म का उद्वेलन है।

निमन्त्रण (Invitation) का हिन्दी रूपान्तर

४७

दिशि-दिशि गर्जित ऋतु-घन प्रलय प्रभंजन झन झन
किन्तु शिखर से शिखर शिखर—मैं चढ़ता जाता
कौन चलेगा साथ चढ़ेगा कौन गहन गिरि
हिमखण्डों घन घूर्णावर्तों पर मुस्काता ?

मैं न तुम्हार नगरों की सीमा में सीमित
बन्द नहीं मैं घर की दूषित प्राचीरों में
मेरे शिर पर मेरे प्रभु का नील गगन है
खड़ा हुआ मैं मुक्त आंधियों की भीड़ों में।

खेल रहा एकान्त संग मैं निज प्रदेश में
दुख दुर्दिन, दुर्भाग्य विपत्ति का मित्र बनाये
कौन पवन प्रशासित जो इस दूर विजन में
आकर मुक्त स्वातन्त्र्य दिवस निशि वर्ष बिताये ?

मैं स्वतन्त्र सम्राट् पर्वतों तूफ़ानों का
स्वाभिमान स्वातन्त्र्य-शक्ति चेतना अमर वर
प्रिय हो जिसे विपत्ति हहरती पुष्पवल्ली जो
संग वह मेरे रहे राज्य में मेरे बसकर।



मैं न मरूँगा।
जब आत्मा इस मर्त्य देह से थक जायेगी
और चिता की लपटों का भोजन होगा तन
पर तब तो यह भवन जलेगा किन्तु नहीं मैं!
उस पिंजड़े का छोड़ मिलेगा मुझे विशाल व्योम का कोना
क्रूर मरण के आलिंगन को धोखा देकर मेरी आत्मा
दूर बहुत हो जायेगी भूखी कब्रों से
रात्रि सूर्य को अपनी ठंडी गहराई में छिपा रखेगी
निश्चय होगा अन्त काम का
निरत परिश्रम करने वाले तारों को भी मुक्ति मिलेगी
लेकिन अन्त न मेरा होगा,
अन्तहीन मैं सदा रहा हूँ
सदा रहूँगा।
प्रथम सृष्टि का बीज गिरा था जब धरती पर,
उससे भी पहले भीतर मैं पुष्ट हुआ था
और कि अब जब ठंडे हो जायेंगे सब महान ब्रह्माण्ड
तब भी मेरी कथा चलेगी सृष्टि-पृष्ठ पर!
मैं हूँ तारों का प्रकाश

सिंहों का बल,
सुख ऊषाओं का
मैं हूं पुरुष, प्रकृति की धारक,
मैं असीम हूं मैं अनादि हूं मैं अनन्त हूं!
एक वृक्ष मैं
जो एकाकी खड़ा हुआ इस महाकाश में,
तुहिन बिन्दु का मौन पास मैं,
मैं अपार सागर जीवन का!
आकाशों को हाथ उठाये,
सृष्टि-प्राण धरती का मैं पालन करता हूं,
एक चिरंतन चिन्तक था मैं जन्म समय भी
और रहूंगा—
मैं असीम हूं, मै अनन्त हूं।





चेतनाशील चिर देवि ! कमल कुञ्जों में तुम
मैं कहाँ तुम्हारे हेतु सजाऊँ शुभ आसन,
तव उन्नति-पथ रत चरण हेतु यह हृदय-पटल
पाटल प्रभात-सा अरुण, बनेगा सिंहासन !

जो दुख जग में अप्रिय वह तुम्हें असह्य सदा
मैं सदा रहूँगा निष्कलंक चिर पूर्णकाम
ओ विश्व-भूमि-अनुरंजित अनुपम सौन्दर्य-शक्ति
मम मन में चिर चिर दीप्त करो निज दीप्ति-धाम !

तुमको न सहन पल एक हृदय बंजर-बीहड़
तुम सदा पहनतीं अमर प्रेम के छन्द-बन्ध
माधुर्य्यमयी ! अपनी अनुपम जादू-छवि से
मानस-मरु मधुर बना दो शाश्वत-स्नेह सिन्धु ।

स्वप्न-तरी (Dream Boat) का हिन्दी रूपान्तर

५०

ज्योति शिखा-सी भृकुटि प्रदीपित तप्त कांचन सदृश शरीर,
स्वप्न-ज्वाला निर्मित नौका में आया था वह मेरे तीर।
बोला—साथ चलोगे क्या तुम अन्तराग्नि है क्या तैयार?
नीरवता हो गयी ध्वनित बन एक निगूढ़ मधुर झंकार।

अन्तर की विश्रान्ति-गुहा में छिपा हुआ कुछ उठा सिहर
जीवन का चिर वांछित सुख सब स्मृति-पटल पर गया बिखर।
सोचा जब आनन्द गया वह त्याग सदा को अतिथि समान
स्वप्न-तरी तिर गयी हो गया स्वर्ण पुरुष वह अन्तर्ध्यान।

लोकान्तर के रिक्त शून्य में ही अब है उसका आवास,
प्रेम शिखा बुझ गयी मिटा सब पूर्व हास आनन्द विलास।
अस्त हुआ सौभाग्य, रिक्तता ही है केवल पूर्ण विराम
आती स्वप्न-तरी न, न आता वह हिरण्मय देव ललाम।